चन्दामामा
माँ-बच्चों का मासिक पत्र
50

Photo by J. V. Sivarama Sastry

पुरस्कृत परिचयोक्ति

'तू क्यों उड़ता आज अकेला ?'

प्रेषिका : कुमारी इन्दिरा, चंडीगढ़

ए.वी.एम.

संगीत - विनोदपूर्ण सामाजिक चित्र...

संगीत: हेमन्त कुमार
संवाद-गीत: राजेन्द्र कृष्ण
दिग्दर्शन: प्रसाद

AVM PRODUCTIONS

चन्दामामा

अप्रैल १९५७

राजकपूर का
अब दिल्ली दूर नहीं
निर्देशन : अमर कुमार
कहानी
अख़्तर मिरज़ा
संगीत
दत्ता राम
संवाद
शैलेन्द्र • हसरत जयपुरी

नयी कोडक

'वेरीक्रोम'

हर तरह की रोशनी में अधिक अच्छे

कोडक 'वेरीक्रोम' पैन फ़िल्म पर चाहे धूप में चित्र खींचिये, चाहे धुंधली रोशनी में खींचें या फ़्लैश की मदद से खींचें — आपके चित्र हमेशा ही अधिक सुन्दर आयेंगे; क्योंकि यह फ़िल्म सभी रंगों को ग्रहण करती है। पेशेवर लोग इसी तरह की फ़िल्म इस्तेमाल करते हैं और अब पहली बार यह फ़िल्म आम कैमरों के लिए मिलने लगी है।

नयी कोडक 'वेरीक्रोम' पैन फ़िल्म ३ विशेषताओं के कारण अपने प्रकार की फ़िल्मों में सर्वोत्तम है।

- **रंगों के प्रति कमाल की ग्रहणशीलता**
  इस फ़िल्म पर किसी भी रंग के हलके और गहरे सभी रूप उतर आते हैं।
- **तेज़ रफ़्तार**
  दिन की रोशनी में ८०, बिजली की रोशनी में ६४।
- **फ़ाइन ग्रेन**
  इससे नेगेटिव बहुत ही स्पष्ट आते हैं और फिर आप उन पर से अत्यंत सुन्दर एनलार्जमेन्ट तैयार करवा सकते हैं।

माहिर और पेशेवर लोगों की तरह सुन्दर चित्र खींचने के लिए अपने कैमरे में हमेशा कोडक 'वेरीक्रोम' पैन फ़िल्म ही इस्तेमाल कीजिए।

कोडक लि० (सीमित दायित्व सहित इंग्लैण्ड में संस्थापित)
बम्बई - कलकत्ता - दिल्ली - मद्रास

विश्वसनीय 'कोडक' कैमरे से

FOR DEAFNESS
HAVE YOU HEARD ABOUT THE NEW VACCUMATIC 3-F. HEARING AID?
THE 57 MODEL HAS DONE WONDERS

डोंगरे
बालामृत

यह लो तुम्हारा
अशोका
अशोका पेन वर्क्स
तेनाली
आन्ध्र

मधुर सुगंधवाला....
(रजिस्टर्ड)
"लोमा"
★ सदा बाल काले रखने के लिए।
★ दिमाग को ठंडक पहुँचाने के लिए।
★ लोमा ही खरीदें।

● मां के दृष्टिकोण में . . .

टिकाऊपन बड़ी चीज़ है।

हाथकरघे के बने वस्त्र प्रत्येक बालक की आवश्यकता-पूर्ति कर देते हैं। ये धुल सकने योग्य और टिकाऊ होने के साथ साथ सुंदर छपाई के होते हैं जो नन्हे से मन को भी लुभा लेते हैं। कुशल बुनकरों के हाथों से बने ये वस्त्र उच्च कोटि के होते हैं—सब से बड़ी बात है कि ये कम खर्चीले होते हैं।

हाथ करघे के
वस्त्र

उत्तमता में सर्वश्रेष्ठ, रंग, बुनावट और डिजाइनों के लिए प्रशंसित

अखिल भारतीय हाथकरघा बोर्ड, शाहीबाग हाउस,
विटेटरोड, बैलार्ड एस्टेट, बंबई-१.

चन्दामामा

संपादक : चक्रपाणी

प्राचीन हिन्दू धर्म के दो बड़े आदर्श हैं—"सत्यं वद" और "धर्मं चर"। इनका अर्थ है—सच बोलो और धर्म का आचरण करो।

इन दो आदर्शों पर, कई उपदेश दिये गये हैं। इनकी कई प्रकार की व्याख्या हुई है। ये दो ऐसे आदर्श हैं, जो भिन्न भिन्न शब्दों में, परन्तु समान अर्थ में, संसार के अन्य धर्मों में भी बताये गये हैं।

सत्य सुख के मार्ग को प्रशस्त करता है। प्रति मानव के जीवन का उद्देश्य सुख ही है। असत्य से, क्षणिक सुख भले ही मिले, पर सत्य से ही शाश्वत सुख-प्राप्ति होती है। मनुष्य के हर कार्य के आधार में सत्य की प्रेरणा होनी चाहिये।

इस अंक में हम "दान का पात्र" नाम की कहानी दे रहे हैं। सत्य बोलना, जितना धनी का कर्तव्य है, उतना ही गरीब का भी है। कहानी का नायक गरीब है, पर वह असन्तुष्ट नहीं है। सत्य बोलने से सन्तोष की भावना पैदा होती है और सन्तोष शान्ति प्रदान करता है। शान्ति में सुख है।

अंक : ८

अप्रैल १९५७

वर्ष : ८

मुख - चित्र

पाण्डवों ने बारह वर्ष का अरण्यवास पूरा किया, अब उन्हें एक वर्ष तक अज्ञातवास करना था। भाईयों से परामार्श करके, युधिष्टर ने, यह समय, मत्स्यदेश में, विराट राजा की नौकरी में बिताना चाहा।

पर यह समस्या उठी, कौन कौन क्या क्या काम करें।

"मैं ब्राह्मण का वेष धारण कर, कंकु नाम रखकर, विराट की नौकरी कर, शतरंज का खेल खेलकर उनका मनोरंजन करूँगा।" युधिष्टिर ने कहा।

"मैं बल्लल नाम रखकर, विराट का रसोइया बनकर, मैं अपने पकवानों से, और बल से, विराट की हर तरह से मदद करूँगा।" भीम ने कहा।

"मैं अपने बड़े बाल रखकर, आभूषण पहिन, बृहन्नला नाम रखकर, नपुंसक के रूप में, अन्तःपुर में प्रवेश कर, अन्तःपुर की स्त्रियों को नृत्य सिखा दूँगा। राजा और रानी का, नृत्य व संगीत से मन बहलाऊँगा।" अर्जुन ने कहा।

"मैं अश्व विद्या अच्छी तरह जानता हूँ। मैं दामगुन्थि नाम रखकर विराट की अश्वशाला में— नौकरी करूँगा। घोड़ों को सिखाना, उनके बीमार पड़ने पर उनकी चिकित्सा करना मुझे आता है।" नकुल ने कहा।

"मैं तन्त्रीपालक नाम रख कर, विराट की गौए चराऊँगा।" सहदेव ने कहा।

"मैं सैरन्ध्री होकर, विराट की पत्नी, सुधेष्णा के पास नौकरी करूँगी। उसके पास मुझे कोई दिक्कत न होगी।" द्रौपदी ने कहा।

यह निश्चय कर, पाण्डव, धौम्य, साथ में ब्राह्मण, और नौकर चाकरों से बिदा लेकर द्वैत बन से, द्रौपदी को साथ लेकर मत्स्य देश गये। विराट नगर से कुछ दूरी पर उन्होंने रुक कर, अपने वेश बदल लिये। श्मशान में, एक वृक्ष के ऊपर उन्होंने हथियार छुपाकर रख दिये। उसके ऊपर एक शव रख दिया।

फिर उन्होंने, आपस में एक दूसरे को बुलाने के लिये, जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन, जयद्बल, पाँच नाम रखे। वे विराटनगर की ओर चल दिये।

बाप - बेटा

दान का पात्र

एक बार बोधिसत्व काशी के राजा के रूप में पैदा हुए। उनके समय में सीमा पर कुछ लोगों ने विद्रोह किया। विद्रोह दबाने के लिए, राजा अपनी सेना के साथ गया। विद्रोहियों और राजा के सैनिकों के बीच बड़ा युद्ध हुआ। युद्ध में राजा घायल हुआ। जिस घोड़े पर वह सवार था, वह घोड़ा बिगड़ उठा, और मैदान छोड़कर भाग गया।

थोड़ी देर में राजा, सीमावर्ती गाँव के एक चबूतरे पर पहुँचा। उस समय गाँव के तीस बड़े बुजुर्ग, वहाँ बैठे गाँव के बारे में विचार-विमर्श कर रहे थे। तल्वार, ढ़ाल, और कवच पहिने, राजा के वहाँ उपस्थित होते ही एकत्रित लोग डर के मारे तितर बितर हो गये। परन्तु एक व्यक्ति उस चबूतरे से न हिला।

उसने राजा के पास आकर पूछा—"क्या तुम विद्रोही हो?—या राजा की तरफ़ हो?"

"मैं राजा की तरफ़ ही हूँ।" राजा ने जवाब दिया।

यह सुन वह ग्रामवासी कुछ सन्तुष्ट हुआ। उसने कहा—"तो आओ, मेरे साथ घर चलो।" यों कहकर वह राजा को अतिथि बनाकर अपना घर ले गया। पत्नी से उसके पैर धुल्वाये। अच्छा भोजन देकर, उसकी अतिथि-सेवा की। राजा के घोड़ों को भी, उस व्यक्ति ने स्वयं अपने हाथों दाना पानी दिया। उसकी भी मालिश की।

राजा उसके घर चार दिन रहा। उसके घाव भर गये। और इस बीच विद्रोह भी दबा दिया गया।

राजा जब काशी वापिस जा रहा था तो उसने अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा —"अब मैं जा रहा हूँ। मैं काशी का रहनेवाला हूँ। मेरा घर क़िले में ही है। मेरी एक पत्नी है और दो लड़के। आप जब काशी आयें, तो दाहिनें हाथ के तरफ़वाले उत्तर द्वार के पालक से पूछिये— "महाश्वारोही का घर कहाँ है?" तब वह सीधे आपको हमारे घर ले आयेगा। आपको कोई तकलीफ़ न होगी। जब तक चाहें हमारे घर में अतिथि बनकर रहिये।"
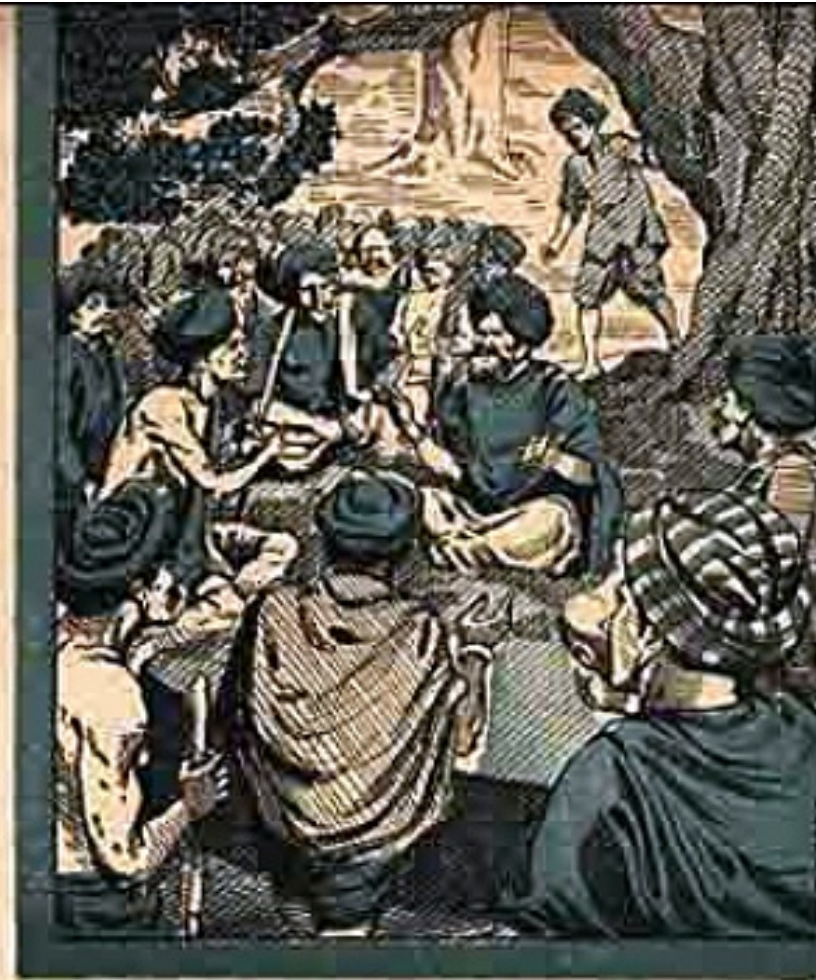
राजा, अपनी सेना को एकत्रित करके, काशी नगर वापिस चला गया। उसने, उत्तर द्वार के पालक को अपने पास बुलाया और उसे अलग ले जाकर कहा— "अगर तेरे पास कोई आकर पूछे कि "महाश्वारोही का घर कहाँ है" तो तू उसे सीधे मेरे पास आदरपूर्वक ले आना। उन्हें तकलीफ़ न होने पावे, याद रखना।"

राजा ने बहुत दिनों तक उस ग्रामवासी की प्रतीक्षा की, पर वह न आया। उसे अपने यहाँ आने को बाधित करने के लिए राजा ने उसके ग्राम पर नये नये कर लगवाये। तब भी ग्रामवासी न आया।

थोड़ा समय और प्रतीक्षा कर, राजा ने उस ग्राम पर एक और कर लगवाया। इस तरह दो-तीन बार कर लगने के बाद गाँववाले बहुत परेशान हो गये और उस ग्रामवासी से उन्होंने कहा—"इन करों के कारण हम मर रहे हैं! तूने कहा था कि काशी में तेरा कोई मित्र है। उसके पास जाकर तू हमारी हालत उसे बता देना और रोना-धोना कि हम कर नहीं दे पा रहे हैं। कर हटाने के लिए प्रार्थना करना।"

"मेरे मित्र को देखना कोई मुश्किल काम नहीं है। पर उसके पास मैं खाली

हाथ कैसे जाऊँ? उसकी एक पत्नी है। दो लड़के हैं। सब के लिये कपड़े ले जाने होंगे न? उसकी पत्नी के लिए कुछ जेवर-जवाहरात भी ले जाने होंगे! आप उन सब चीज़ों को तैयार कीजिये! मैं ख़ुशी ख़ुशी काशी हो आऊँगा।" ग्रामवासी ने कहा।

लोगों ने कपड़े, गहने वग़ैरह जमा कर दिये। वे गाँववालों के काम आनेवाले, मोटे कपड़े और भद्दे गहने थे। ग्रामवासी ने अपनी पत्नी से रोटी, पक्वान वग़ैरह बनवाये। सब चीज़ों की एक गठरी में बाँधकर वह साथ ले गया।

थोड़े दिनों बाद वह काशी पहुँचा। क़िले के दाहिनी तरफ़वाले उत्तर द्वार के पास जाकर उसने द्वारपालक से पूछा—"देखो भाई! मुझे महाश्वारोही के घर जाना है। रास्ता किस तरफ़ है? ज़रा मुझे बता देना!"

तुरत, द्वारपालक, उसको अपने साथ ले गया और उसको अन्तःपुर में राजा के समक्ष उसने उपस्थित किया।

उसे देखकर राजा बड़ा खुश हुआ। ग्रामवासी, जो कुछ खाने-पीने के लिए लाया था न केवल स्वयं राजा ने ही

खाया, अपितु उसे अपने लड़कों, पत्नी, सामन्त और मन्त्री आदियों को भी खिलवाया। वह जो मोटे कपड़े लाया था, उन्हें पत्नी और बच्चों से पहिनने के लिए कहा। खुद भी उसने कुछ कपिड़े पहिने। फिर उसने अपने अतिथि को महीन कपड़े पहिनवाये, अपनी रसोई में ही खाना बनवाकर उसे खिलवाया। फिर अन्त में राजा को यह मालूम होने पर कि यह कर हटवाने के लिए आया है, राजा ने मन्त्रियों को आज्ञा दी कि उसके गाँव पर जितने कर लगाये गये थे वे सब हटा दिये जायें।

राजा ने दरबार बुलवाया। उस दरबार में सामन्त और मन्त्रियों के सामने, उसको अपना आधा राज्य देने की घोषणा की। उस ग्रामवासी का, राजा का इतना आदर-सत्कार करना, शुरू से ही मन्त्रियों को नहीं भा रहा था। उसको आधा राज्य दे देना और भी बुरा लगा। उनकी नज़र में यह कतई नादानी थी।

परन्तु वे राजा का विरोध करने का साहस न कर सके। इसलिये उन्होंने राज कुमार के यहाँ जाकर उससे कहा—"राजकुमार! महाराजा आपके ऊपर बड़ा

अन्याय कर रहे हैं। जो आधा राज्य आपको मिलना चाहिए था, वह उन्होंने उस गँवार को दे दिया है। इस बात पर आपको राजा के सामने तुरत आपत्ति करनी चाहिये। वरना बड़ा अनर्थ हो जायेगा।"

राजकुमार ने मन्त्रियों की सलाह पर विचार किया और तुरन्त राजा के सामने जाकर अपनी आपत्ति प्रकट की।

राजाने सब सुनकर कहा—"बेटा! यह तुम्हारा अपना ख्याल नहीं है। किसी ने तुम्हें उकसाया है। यह सवाल हम से तुम दरबार में पूछना। तब मैं तुम्हें उत्तर दूँगा।"

राजकुमार ने भरे दरबार में, राजा से पूछा—"आपने इस ग्रामवासी को क्यों आधा राज्य दिया है?"

तुरत राजा ने कहा—"राजकुमार! इस ग्रामवासी ने कभी मुझे प्राण-दान दिया था, यह तुम नहीं जानते।" फिर उसने विस्तार से बताया कि सीमा प्रदेश में, जब विद्रोह हुआ था, तब कैसे युद्ध हुआ था, कैसे उस ग्रामवासी ने उसकी रक्षा की थी। उसने अन्त में कहा—

"अपात्र को दान देना जितना ग़लत है, उतना ही पात्र को न देना ग़लत है। यह जाने बग़ैर कि मैं राजा हूँ, उसने मेरा इतना उपकार किया था। मैंने उसे कई बार बुलाया, पर क्योंकि वह प्रत्युपकार नहीं चाहता था, वह नहीं आया। आख़िर ग्राम के कल्याण के लिए ही वह आया। मेरे आधे राज्य के लिए इससे अधिक योग्य कौन है?"

यह सुन मन्त्री और सामन्त शर्मिन्दा हुए। राजकुमार बड़ा खुश हुआ। राजा ने मृत्यु पर्यन्त, उस ग्रामवासी का खुब सम्मान किया।

[३]

[पिंगल की सहायता से पद्मपाद, झील में से दो मगर के बच्चों को लेकर बाहर निकला। फिर पद्मपाद ने अपना परिचय देकर पिंगल को अपने साथ भल्लूक पर्वत आने के लिए कहा। अपने पिता के वृद्ध गुरु द्वारा महा मायावी मान्त्रिक के बारे में, बताया हुआ वृत्तान्त, वह पिंगल को सुनाने लगा।]

"भल्लूक पर्वत की, एक नदी के स्रोत के समीप, एक उजड़ा मन्दिर था। उस मन्दिर में, महामायावी नाम के मान्त्रिक की समाधि थी। जहाँ उसकी समाधि बनी हुई थी, वहाँ पर तीन मुख्य वस्तुएँ थीं। एक: उसकी अंगुली की अँगूठी। उसको पहिनने से, संसार के भूगर्भ के सब सोने-हीरे, खज़ाने दिखाई देते थे। दूसरी: हीरों से जड़ी तल्वार थी। उसमें से निकलनेवाली चिनगारियाँ, बड़े से बड़े शत्रु का संहार कर सकती थीं। तीसरा: सोने का बना ग्लोब। उस ग्लोब को अपने वश में करके घुमाने से, जिस देश का कोई राजा बनना चाहें, वह उस देश का राजा बन सकता था। यह उसका माहात्म्य था।

परन्तु इन चीज़ों को पाने के लिए यह ज़रूरी था कि पहिले पहले तोता झील में, मगर के रूप में रहनेवाले उसके शिष्यों
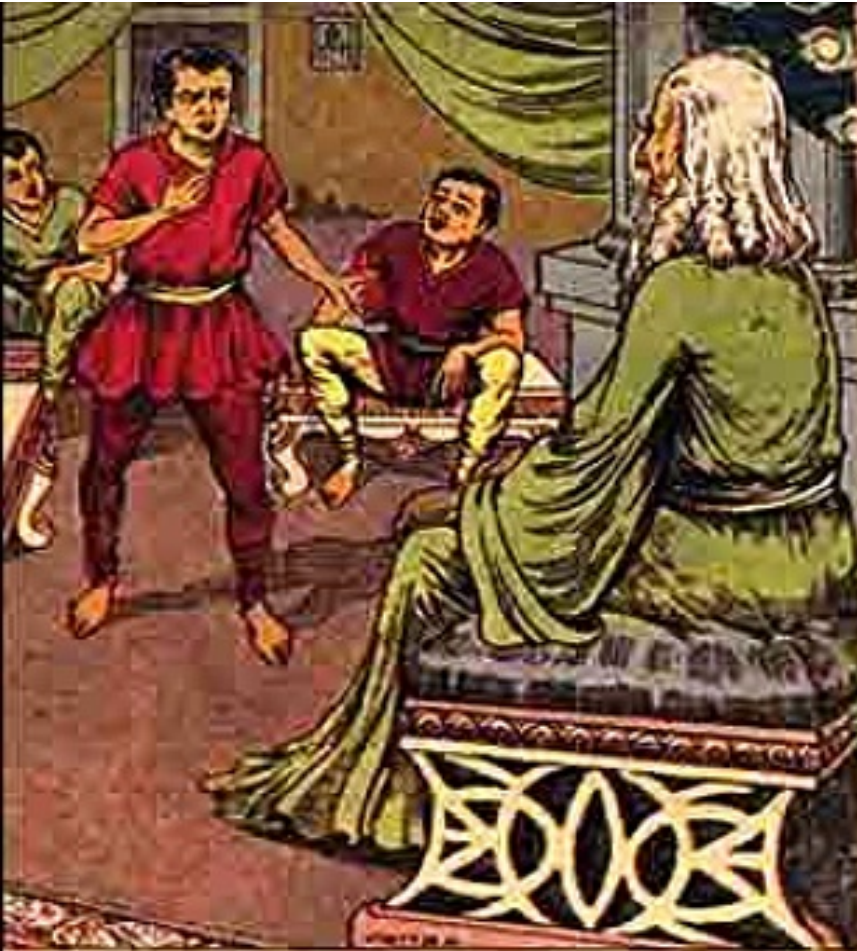
को पाया जाय। इस काम के लिए पिंगल नाम के मछियारे की मदद आवश्यक थी। और उसी पिंगल की सहायता से महामायावी की अँगूठी, तलवार और ग्लोब पाये जा सकते हैं। जो उन तीनों चीज़ों को पा लेगा, वह ही तुम्हारे पिता के छोड़े हुए मन्त्र ग्रन्थ का उपयोग कर सकेगा। अन्यथा यह सम्भव नहीं है।"

हमारे पिता के गुरु इतना कहकर, हमारे चेहरे गौर से देखने लगे। जब मुझे मालूम हुआ कि तोता झील में महामायावी के शिष्य मगर के रूप में हैं और उनको पाना ज़रूरी है तो मेरा शरीर काँप गया। महा-मान्त्रिक महामायावी के शिष्यों से, विशेषतः जब कि वे मगर के रूप में पानी के अन्दर थे, कैसे मुक़ाबला किया जाय?

शायद मेरे और भाई भी इसी बात पर हैरान हुए होंगे। गुरु ने हम तीनों की ओर देखते हुए, ज़ोर से हँसकर कहा —"महामायावी के शिष्यों को हराने के लिए, यह पिंगल तुम्हारी बहुत मदद कर सकता है। परन्तु इस प्रयत्न में, हो सकता है कि तुम अपनी जान से भी हाथ धो बैठो। पहिले ही सावधान किये देता हूँ।"

हम भाइयों में, पहिले मंडन ने कहा— "मैं यह काम करने के लिए तैयार हूँ। पिता जी के मन्त्र ग्रन्थ पर मुझे जितना मोह है, उतना अपने प्राण पर भी नहीं है।"

उसके इस प्रकार कहने से, मेरा और अनुरूप का कुछ ढाढ़स बँधा। हमने कहा कि हम भी महामाया के शिष्यों से लड़ने के लिए तैयार हैं। तब गुरु ने हमें तोता झील का रास्ता बताया। तुम से हाथ-पैर बँधवाकर, नदी में गिरने के बाद, हमें क्या करना होगा, इस बारे में भी बताया। "अच्छा, जो कुछ मदद मैं कर सकता

था, मैंने पहिले ही कर दी है। अब आपके साथ मेरे भल्लूक पर्वत जाने की क्या ज़रूरत है?" पिंगल ने पूछा।

पद्मपाद ने यह प्रश्न ध्यान से सुना और थोड़ी देर सोचकर, स्नेह से उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"पिंगल! लगता है, तुम मुझे देखकर डर रहे हो। मेरे कारण तुम्हें कोई नुकसान तो होगा नहीं, बल्कि फ़ायदा ही फ़ायदा होगा। महामायावी की जिस उजड़े मन्दिर में समाधि है, उसमें तुम्हें ही प्रवेश करना होगा।"

"क्या आप मुझे यह आश्वासन दे सकते हैं कि मुझे किसी प्रकार की हानि न होगी?" पिंगल ने पूछा।

पद्मपाद ने वह आश्वासन दिया। पिंगल को उस समय अपनी माँ याद आई। "मैं कितने दिनों बाद भल्लूक पर्वत से वापिस आ सकता हूँ?" पिंगल ने पूछा।

"दो महीने! इससे अधिक समय नहीं लग सकता। पर जब तुम वहाँ से घर वापिस जा रहे होगे, तो तुम इस तरह नहीं होगे। मैंने वचन दे ही रखा है कि मैं तुम्हें संसार का सब से बड़ा रईस बना दूँगा।" पद्मपाद ने कहा।

"तब की बात जाने दीजिए। इस समय मेरे पास एक कानी-कौड़ी भी नहीं है। दो महीनों में मेरी माँ और भाइयों की कैसे गुज़र होगी?" पिंगल ने पूछा।

पद्मपाद ने घोड़े पर लदी थैली में से, हज़ार मुहरें पिंगल को देते हुए कहा—"यह धन अपनी माँ को दे दो। तुम्हारे कुशल-क्षेम के बारे में उसे फ़िक्र करने की कोई ज़रूरत नहीं है। कल इसी समय, यहाँ मुझे मिलना।"

पिंगल पद्मपाद का दिया हुआ धन लेकर, खुशी खुशी घर गया। जब वह

घर पहुँचा तो वहाँ उसके भाई न थे। सिर्फ़ माँ ही उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। पिंगल ने हज़ार मुहरों को माँ के सामने बिखेर दिये। वह काँप उठी।

"पिंगल! इतना धन तुम कहाँ से लाये? मुझे डर लग रहा है कि कहीं तुम किसी मुसीबत में न फँस जाओ।" माँ ने कहा।

पिंगल ने सारी घटना अपनी माँ को सुनायी। उसने उसको यह भी बताया कि दो महीनों में वह वापिस आ जायेगा, और उसके बारे में डरने की कोई ज़रूरत न थी।

"मुझे मान्त्रिकों की भलाई पर भरोसा नहीं है। तुम कहते हो कि यह पद्मपाद और मान्त्रिकों की तरह नहीं है। मैं तीन करोड़ देवताओं से प्रार्थना करती हूँ कि तुम सुरक्षित घर वापिस आ सको।" माँ ने कहा।

अगले दिन पिंगल ठीक समय पर पद्मपाद से मिलने, तोता झील के पास गया। झील के किनारे पद्मपाद अकेला बैठा हुआ था। उसके पास सिवाय एक थैले के और कुछ न था। न घोड़ा था, न कुछ और ही।

पिंगल ने उसके पास जाकर पूछा—"पद्मपाद! क्या हमें पैदल ही जाना होगा!"

"पैदल! नहीं, यह असम्भव है। भल्लूक पर्वत पहुँचने के लिए हमें दो तीन सौ मील का सफ़र करना होगा। उस सफ़र के लिए मामूली घोड़े काम में नहीं आ सकते। आज से दो दिन बाद, एक पर्व दिन आ रहा है। उस दिन हमें भल्लूक पर्वत पहुँचना होगा और ये हैं, हमारे वाहन।" कहते हुए पद्मपाद ने चुटकी भर मिट्टी ली और मन्त्र फूँक कर भूमि पर फेंक दी।

मिट्टी का भूमि पर गिरना था कि भूमि फौरन फट गई। उसमें से सिर उठाकर, रेंकते हुए, दो गधे बाहर आये। पद्मपाद उनमें से एक की पीठ पर, थैला डाल कर सवार हो गया। पिंगल डर के कारण काँप रहा था। वह गधे की ओर देखता खड़ा रहा। उसे न सूझा कि क्या किया जाय।

"पिंगल! यह तुम्हारी सवारी है। जल्दी बैठो। चलो चलें।" पद्मपाद ने हँसते हुए कहा।

"ये मामूली गधे नहीं हैं। कोई भूत हैं। मुझे डर लग रहा है।" पिंगल ने कहा।

"यह बात सही है कि ये मामूली गधे नहीं हैं। अगर भूत भी हैं तो क्या हुआ? ये जैसा हम कहेंगे, वैसा करेंगे। ये हवा की तरह दौड़ सकते हैं। तुम फ़िज़ूल डरो मत" पद्मपाद ने कहा।

पद्मपाद के यह कहने पर पिंगल में भी हिम्मत आई। वह निर्भीक हो गधे पर चढ़ बैठा। तुरत गधे रेंकते हुए भागने लगे....कुछ दूर हवा में, और कुछ दूर भूमि पर।

अन्धेरा होने के समय वे एक जंगल के पास पहुँचे। पद्मपाद ने गधे पर से उतरते हुए कहा—"पिंगल! आज रात को हम यहाँ आराम करेंगे। बाकी सफ़र कल शाम तक किया जा सकता है।" पिंगल थका हुआ था ही, वह यह मान गया।

घास पर थोड़ी देर आराम करने के बाद, पिंगल को नहाने की इच्छा हुई। परन्तु उस इलाके में कहीं पानी का पता न था। उसने पद्मपाद से पूछा। पद्मपाद ने जंगल की ओर इशारा करके कहा—"वहाँ जंगल में एक नाला है। तुम्हें वहाँ किसी को देखकर डरने की ज़रूरत नहीं है।"

पिंगल जंगल की ओर चला। वह यह न समझ सका कि पद्मपाद ने क्यों कहा था—"किसी को देखकर डरने की ज़रूरत नहीं है"। वह होशियारी से, पेड़ों के नीचे से होता हुआ, नाले के पास पहुँचा। उस नाले के निर्मल पानी को देखकर वह बड़ा खुश हुआ। वह नदी में उतर गया। तब उसे भयंकर गर्जन सुनाई दिया, जिससे वह प्रान्त गुंजित हो उठा। "मुझे बचाइये। मैं आपकी मदद करूँगा। मुझे........" यह भयंकर आवाज़ आ रही थी।

पिंगल यह सुनते ही घबरा उठा। उसकी नज़र उस तरफ़ गई, जिस तरफ़ से

आवाज़ आ रही थी। नाले के पास ही बड़ी बड़ी चट्टानों से, जंज़ीरों से बँधा हुआ कोई बदसूरत व्यक्ति उसे दिखाई दिया। पिंगल डर के कारण वापिस भागने की सोच ही रहा था कि उसे ख्याल आया कि वह व्यक्ति बड़े बड़े चट्टानों से बँधा हुआ था और भाग नहीं सकता था। वह वहीं चुपचाप खड़ा हो गया।

"हे स्वामी! मेरे हाथ के इन जंज़ीरों को काटकर, मेरी रक्षा कीजिये। आप जो चाहेंगे, मैं आपकी वह मदद करूँगा।" कहकर, वह बदसूरत व्यक्ति, पिंगल की ओर मुँह मोड़कर चिल्लाने लगा।

पिंगल का डर जाता रहा। वह धीमे-धीमे, एक एक कदम रखता, उस व्यक्ति के पास गया। जब उसको पास से देखा तो वह और कुरूपी नज़र आया। उसके पैर ताड़ की जड़ की तरह थे। सारे शरीर पर जंगली भैंसे की तरह, नोकीले, मोटे मोटे बाल थे। कान हाथी के कान की तरह थे। आँखें अंगारे बरसाती-सी लगती थीं। पिंगल भय के कारण कम्पित हो उठा।

"स्वामी! मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपकी हर तरह से सहायता कर

सकता हूँ। इन तीन लोकों में कहीं भी, मैं आपको अपने कन्धों पर बिठाकर, ले जा सकता हूँ।" उस बदशकल व्यक्ति ने कहा।

पिंगल यह सुनकर हँसा। "तीन लोक क्या, चौदह लोकों में भी अगर मैं जाना चाहूँ, तो मुझे ले जाने के लिए एक गधा है। पर तू गधे से भी अधिक बलवान और बुद्धिमान नज़र आता है। तेरा नाम क्या है?" पिंगल ने पूछा।

"मेरा नाम भल्लूक केतु है।" उस कुरूपी ने सविनय कहा।
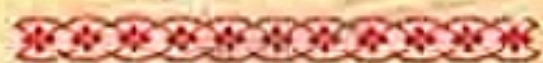
"क्या तुम पासवाले भल्लूक पर्वत के बारे में कुछ जानते हो?"—पिंगल ने पूछा।

"भल्लूक पर्वतों के बारे में!" भल्लूक-केतु यह कहकर ज़ोर से हँसा। फिर कहने लगा—"मैं किसी ज़माने में, उस भल्लूक पर्वत का अधिपति था। एक मान्त्रिक के कारण मेरी यह हालत हुई है। अगर तुमने मुझे छोड़ दिया तो मैं इन पर्वतों की सर्व सम्पदा, तुम्हें सौंप दूँगा।"

भल्लूक केतु के यह कहने पर पिंगल को लालच हुआ। भल्लूक केतु की सहायता से, उसने सोचा, भल्लूक पर्वत की सभी धन सम्पति, अपने वश में कर सकूँगा। अगर उचित समझा गया, तो उसमें से एक हिस्सा पद्मपाद को भी दिया जा सकता है।

"अच्छा, तो मैं तुम्हें यहाँ से छोड़ देता हूँ; पर मुझे यह कैसे विश्वास हो कि तुम छूट कर मेरी हानि नहीं करोगे?" पिंगल ने पूछा।

भल्लूक केतु ने दयनीय दृष्टि से पिंगल की ओर देखकर कहा—"स्वामी! अगर मैं अपने वचन का पालन न करूँ तो मेरा सिर फूट जायेगा। यह मुझ पर शाप है। आपको वचन देने के बाद, बशर्ते कि मैं मरना न चाहूँ, मैं अपने वचन से मुकरूँगा नहीं।" भल्लूक केतु ने कहा।

पिंगल को भल्लूक केतु की बात पर विश्वास हो गया। नाले के किनारे से, एक पत्थर उठाकर पिंगल ज़ंजीर तोड़ने ही जा रहा था कि पीछे से उसको पद्मपाद की भयंकर आवाज़ सुनाई दी—"पिंगल! ठहरो।" उस आवाज़ को सुन, भयभीत हो पिंगल ने पीछे की ओर देखा।

[अभी और है]

सजीव मूर्ति

विक्रमार्क ने ज़िद न छोड़ी। पेड़ से शव उतार कर, कन्धे पर डाले वह चुप-चाप श्मशान की ओर चल पड़ा। तब शव में स्थित वेताल ने कहा—"राजा तुम कीर्ति के लिए इतनी मेहनत कर रहे हो। परन्तु जीवन में कीर्ति की अपेक्षा आनन्द ही मुख्य है। जानते हो, मय ने क्या किया था! मैं उसकी विचित्र कथा सुनाता हूँ। सुनो।" उसने इस प्रकार कहा :

देवताओं का शिल्पी विश्वकर्मा था। राक्षसों का शिल्पी मय था। दोनों ही बड़े कलाकार थे। पर दोनों में मय ही बड़ा कलाकार था। पर चूँकि वह राक्षसों का शिल्पी था, इसलिये देवता उसकी प्रशंसा न करते। विश्वकर्मा को ही बड़ा कलाकार कहते।

वेताल कथाएँ

मय जितना बड़ा कलाकार था, उतना ही अच्छा उसका स्वभाव था। उसे इसकी परवाह न रहती कि देवता उसकी परवाह नहीं कर रहे हैं। परन्तु दूसरे राक्षसों ने उसे आराम से न रहने दिया। उन्होंने उसके पास जाकर कहा—"क्या तुम में इतना भी गर्व नहीं है ! विश्वकर्मा तुम्हारे अँगूठे की भी बराबरी नहीं कर सकता। और जब उसे लोग बड़ा कलाकार कह रहे हैं तो तुम चुपचाप बैठे हो। क्यों ?"

मय ने हँसकर कहा—"क्या देवता नहीं जानते हैं कि मैं कैसा कलाकार हूँ ! क्या मैंने शिव की आज्ञा पर हवा में उड़ने वाला नगर नहीं बनाया था ? पाण्डवों के लिए जो मैंने भवन बनाया था, वह तो सब ने देखा ही होगा !

"विश्वकर्मा भी क्या मामूली कलाकार है ? उसने सारा स्वर्ग बनाया है। सूर्य के चूर्ण से उसने महाविष्णु के लिए चक्र बनाया था। पाण्डवों के लिए उसने इन्द्रप्रस्थ बनाया। अब पुरानी बातों को कुरेदना फ़ाल्तू है। तुम्हारा और विश्वकर्मा की स्पर्धा निश्चित करेंगे। उस स्पर्धा में तुम्हें विश्वकर्मा को हराना होगा।" राक्षसों ने उसे उकसाया।

"अच्छा, तो स्पर्धा का प्रबन्ध करो।" मय ने कहा।

राक्षसों ने देवताओं के पास जाकर कहा—"आप विश्वकर्मा की और मय की स्पर्धा का प्रबन्ध कीजिये। दोनों में कौन बड़ा कलाकार है, मालूम हो जायेगा। आल्तू-फ़ाल्तू बातों से क्या फ़ायदा ?"

देवताओं ने आपस में सलाह-मशवरा करके विश्वकर्मा से यों कहा :

"बृहस्पति का साला, सूर्य का ससुर क्या इस राक्षस शिल्पी से स्पर्धा में हारेगा ?" विश्वकर्मा ने कहा।

देवताओं ने मय को बुलाकर कहा—"तुम्हारी और विश्वकर्मा की स्पर्धा का प्रबन्ध कर रहे हैं। तुम जितनी बड़ी चीज़ का निर्माण करोगे उतनी ही बड़ी चीज़ विश्वकर्मा को बनाने के लिए कहेंगे।" देवताओं ने कहा।

"बड़प्पन की क्या बात है! मैं एक ऐसी सुन्दरी की सोने की मूर्ति बनाने की सोच रहा हूँ, जो त्रिलोक में भी नहीं है। मेरी मूर्ति का मूल्य आँकने के लिए सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा को ही निश्चित कीजिये।" मय ने कहा।

देवता यह बात सन्तोषपूर्वक मान गये।

जल्दी ही असली स्त्री के समान बड़ी, एक सुन्दर सोने की मूर्ति बनाई। देवताओं ने जब आकर वह मूर्ति देखी तो वे हैरान रह गये।

विश्वकर्मा भी हक्का-बक्का था। उसने ब्रह्मा के पास जाकर कहा—"यह मय तुम्हें नीचा दिखा रहा है। उसने एक ऐसी सुन्दर स्त्री का निर्माण किया है, जो तीनों लोकों में नहीं है। उसने यह साबित करने के लिए ही उसे बनाया है कि सृष्टि-कर्त्ता ने भी उतनी सुन्दर स्त्री नहीं बनाई है। जब तक वह मूर्ति संसार में है, तब तक मय की कीर्ति भी अमर रहेगी। और तब तक हम दोनों की बदनामी रहेगी।"

बाकी देवताओं ने भी ब्रह्मा के पास जाकर कहा—"बाबा जी! आप ही को इस स्पर्धा का फैसला करना होगा। नहीं तो विश्वकर्मा की हार होगी और बदनामी भी।"

मय की बनाई हुई सोने की मूर्ति को देखने के लिए ब्रह्मा स्वयं गया। वह भी जान गया कि देवताओं ने जो कुछ कहा था, उसमें कोई अतिशयोक्ति न थी।

उसने मय से कहा—"बेटा! यद्यपि तुम छोटे हो, तो भी तुमने यह सोने की मूर्ति बड़ी अच्छी बनाई है। परन्तु मुझे एक ही बात का खेद है। मैंने कभी निष्प्राण मूर्ति नहीं बनाई है। इस मूर्ति को देखकर मुझे ऐसा लग रहा है कि इसमें अगर प्राण आ जायें तो क्या अच्छा होगा!

विश्वकर्मा से बड़ा कलाकार कहलाने के लिए, क्यों इस मूर्ति को व्यर्थ जाने देते हो! मैं इसमें प्राण डालता हूँ। यह आजीवन तुम्हारी स्त्री बनकर रहेगी। इतनी सुन्दर स्त्री का तुम्हारे पत्नी होने से और अधिक क्या चाहते हो!"

मय ने कुछ देर सोचकर कहा—"देव! ऐसा ही कीजिये। मैं यह मान लूँगा कि मैं विश्वकर्मा से हार गया हूँ।"

देवताओं के आनन्द की सीमा न रही। विश्वकर्मा भी बड़ा सन्तुष्ट हुआ। ब्रम्हा ने सोने की मूर्ति में प्राण डालकर उसको सजीव स्त्री बनाकर उसका नाम "हेमा" रखा। तुरत हेमा और मय का विवाह हो गया। ब्रम्हा और बाकी देवता खुशी खुशी चले गये।

"अब तुम्हें हेमा के सौन्दर्य के बारे में कोई सोचने की ज़रूरत नहीं है। अब उसमें शरीर के सब गुण आ गये हैं। कालक्रम से उसके बच्चे पैदा होंगे। उसे रोग होंगे। बुढ़ापा आयेगा। और आख़िर मर भी जायेगी। मय की कला इस प्रकार मिट्टी में मिल जायेगी।" ब्रह्मा ने देवताओं से कहा।

उसके कथनानुसार सब गुज़रा। हेमा के मन्दोदरी, मायावी और दुन्दुभी, तीन सन्तान हुईं। उम्र के कारण उसके शरीर पर झुर्रियाँ भी पड़ने लगीं। वे राक्षस, जो उसके सौन्दर्य की कभी प्रशंसा करते न अघाते थे, अब चुप थे।

इतने में, देवताओं ने आकर मय से झगड़ा मोल लिया।

"हेमा हमारी लड़की है। अगर हमारे लोक में ही रहती तो यह हमेशा जवान रहती। क्योंकि वह तेरी पत्नी है, इसलिये उसका सौन्दर्य बिगड़ गया है। देख।" वे उसको ले गये।

मय को वैराग्य हो गया। वह अपने बच्चों को लेकर, इधर उधर घूमने-फिरने लगा। जब वह यों घूम रहा था, तब

उसको रावण दिखाई दिया । मय ने उसका मन्दोदरी के साथ विवाह कर दिया। यह कथा तो तुम जानते ही हो।"

बेताल ने कहानी सुनाकर कहा—"राजा मुझे एक सन्देह हो रहा है। मय, जब बड़ा कलाकार था तो उसने विश्वकर्मा को स्पर्धा में क्यों नहीं हराया? क्यों नहीं अमर कीर्ति पाई? जब उसकी मूर्ति के शाश्वत सौन्दर्य को, ब्रह्मा क्षणिक सौन्दर्य में परिवर्तित कर रहा था तो वह क्यों मान गया? क्या उसमें कीर्ति की इच्छा न थी? या उसने सोचा था कि उतनी सुन्दर स्त्री का पति होना काफ़ी था। अगर तुमने जानबूझ कर जवाब न दिया तो तुम्हारा सिर फूट जायेगा।"

तब विक्रमार्क ने यों जवाब दिया:

"जब ब्रह्मा ने हेमा को प्राण दिये थे तभी, मय विजयी हो गया था। क्योंकि मनुष्य की बनाई हुयी मूर्ति में, न पहिले ही न उसके बाद, ब्रह्मा ने कभी प्राण डाले थे। यही नहीं, यह सोचना कि मूर्ति का सौन्दर्य शाश्वत है, ग़लत है। विश्वकर्मा के और मय के बनाये नगर कभी के नष्ट हो चुके थे। पर सौन्दर्य अनश्वर है। मय की बनाई हुयी मूर्ति में प्राण डालकर, ब्रह्मदेव ने ही उस मूर्ति के सौन्दर्य को शाश्वत कर दिया है। हेमा का सौन्दर्य, मन्दोदरी में आ गया। उसे भी त्रिलोक सुन्दरी समझा गया। आज भी प्रति सुन्दर स्त्री में, हेमा का सौन्दर्य है। जब तक संसार है, तब तक वह भी है। क्योंकि यह मय जानता था, इसलिये वह ब्रह्मा की सलाह मान गया।

राजा का इस प्रकार मौन-भंग होते ही, बेताल शव के साथ पेड़ पर जा बैठा।

(कल्पित)

सुकुमार

काशी नगर में कभी सुकुमार नाम का एक ब्राह्मण नवयुवक रहा करता था। वह चौंसठ विद्याओं में पारंगत था। उन दिनों धारा नगरी का राजा भोज, दूर दूर के पंडितों का आदर-सत्कार किया करता था। सुकुमार भी राजा का सम्मान पाने धारा नगरी की ओर निकल पड़ा।

जाते जाते उसको एक ब्राह्मणों का ग्राम मिला। वहाँ वह एक ब्राह्मण के घर में अतिथि होकर रहा। भोजन करते समय सुकुमार से उसने पूछा—"आप कहाँ से आ रहे हैं! कहाँ जा रहे हैं और क्यों जा रहे हैं!"

"मैं काशी नगर का हूँ। राजा भोज के दरबार में सम्मान पाने जा रहा हूँ। मैंने सब शास्त्र पढ़ रखे हैं।" सुकुमार ने कहा।

यह सुनकर मेज़बान ने कहा—"अगर आप सचमुच पंडित हैं तो मर-मराकर धारा नगरी जाने की क्या ज़रूरत है! कुछ भी हो राजा भोज आपको ब्राह्मणों का गाँव तो दे नहीं देंगे! हमारे महाराजा की सरस्वती नाम की एक लड़की है। उसने भी सभी शास्त्र पढ़े हैं। उसने ज़िद पकड़ रखी है कि वह उसी से ही शादी करेगी जो पान्डित्य में उसके समान होगा। जो कोई जीतेगा, उसकी उससे शादी ही न होगी, बल्कि उसका राज्याभिषेक भी किया जायेगा। दूर दूर से पंडितों के झुण्ड झुण्ड आ रहे हैं और एक एक परीक्षा में अनुत्तीर्ण होते जा रहे हैं।"

सुकुमार ने राजकुमारी की परीक्षा में बैठने की ठानी। राजधानी पुरन्दरपुर, उस ब्राह्मण के गाँव से थोड़ी ही दूर थी।

श्री ओम प्रकाश

मेज़बान ने अपने लड़के—शम्बर को सुकुमार के साथ भेजा। दोनों मिलकर राजधानी गये।

दरबार में जाकर, सुकुमार ने अपना कुल, गोत्र, नाम, बताकर कहा कि वह सरस्वती से विवाह करने आया है। अधिकारियों ने उसको एक रहने की जगह दिखाकर उसके बारे में सारी जानकारी राजकुमारी के पास भेज दी।

राजकुमारी ने सुकुमार के पास यह चिट्ठी भेजी—"आप ब्राह्मण हैं। मैं अपको हराना नहीं चाहती; इसलिए मैं आपके लिए कुछ उपहार भेज रही हूँ, आप उन्हें लेकर, मुझे आशीर्वाद देकर चले जाइये।"

जो नौकर यह चिट्ठी लाये थे, वे उपहार भी लाये। सुकुमार ने उन्हें न लिया। शम्बर से इस प्रकार उत्तर दिया: "अगर आपको मुझसे शादी करना पसन्द नहीं है, तो साफ़ साफ़ कह देती। भेंट भेजने की कोई ज़रूरत न थी।

अगर आप मुझे शास्त्रार्थ में हरा देंगी, तो इन उपहारों की ज़रूरत ही न होगी। मैं स्वयं अपने रास्ते पर चला जाऊँगा!"

यह उत्तर देखकर सरस्वती को गुस्सा आया। उसने अपने सैनिकों द्वारा, एक तश्तरी में तरह तरह के फूल रखकर भेजे। सुकुमार ने सोचा कि राजकुमारी शायद माला बनाने की विद्या में परीक्षा ले रही है। उसने तरह तरह की मालाएँ इस तरह बनाईं कि उनसे उसके नाम का बोध होता था। मालाएँ उसने वापिस भेज दीं।

उसके बाद, राजकुमारी ने उसके पास, कुछ असली रत्न, और कुछ नक़ली रत्न, क़ीमत जानने के लिए भेजे। सुकुमार ने असली रत्नों की तो क़ीमत बता दी, और

नक़ली रत्नों का चूरा करके, चूरा उसे वापिस भेज दिया।

उसके बाद, राजकुमारी की सहेली ने अकेले, एक ऐसे तोते को लाकर दिया जो बोल न सकता था। उसने कहा—"राजकुमारी ने इसे बातें सिखाने के लिए कहा है।"

तोते से बातें करवाना भी एक विद्या है। यह विद्या भी सुकुमार जानता था। उसने अगले दिन ही तोते को बातें करना सिखा दिया और उसको राजकुमारी के पास भेज दिया।

तब तक राजकुमारी ने सुकुमार को देखा न था। अब उसने उसके बारे में जानना चाहा। उसने तोते से मालूम कर लिया कि वह सुन्दर था और नवयुवक था। उसने उससे विवाह करने का भी निश्चय कर लिया।

यह बात राज्य में सब जगह फैल गई कि सरस्वती ने सुकुमार से विवाह करने का निश्चय कर लिया है। यह बात शम्बर को भी मालूम हुई। राजकुमारी ने अपने तोते द्वारा एक मणियों की माला, सुकुमार को भेंट में

भेजी थी। सुकुमार ने उसे अपने गले में डाल लिया।

शम्बर को दुर्बुद्धि सूझी। यह कोई न जानता था कि उन दोनों में कौन सुकुमार है। राजकुमारी ने सुकुमार को अभी तक देखा न था और अब उसकी परीक्षा लेगी नहीं। सुकुमार को मारकर, मैं अपने को सुकुमार बताकर मैं राजकुमारी से विवाह कर सकता हूँ और राजा भी बन सकता हूँ।

इस लालच में, रात को जब सुकुमार सो रहा था, तब शम्बर ने उसका सिर एक पत्थर से चकनाचूर कर दिया और उस पत्थर को गले में बाँधकर, उसने क़िले की खाई में उसको फेंक दिया। सुकुमार के गले की मणि की माला उसने लेली।

पर शम्बर के सामने एक और समस्या आ पड़ी। सवेरे होते ही राजकुमारी ने अपने प्रियतय के पास तोते द्वारा एक सन्देश भेजा। उसने आकर सुकुमार की सब जगह खोज की। फिर उसने शम्बर से पूछा—"सुकुमार कहाँ है?"

"मैं ही सुकुमार हूँ। मुझसे क्या काम है?" शम्बर ने पूछा।

"तू सुकुमार क्यों है? बता, वह कहाँ है। राजकुमारी ने एक सन्देश भेजा है।" तोते ने कहा।

"इधर आ, बताता हूँ।" तोते के पास आने पर, उसका गला घोंटकर शम्बर ने पूछा—"बताता है कि तुझे मारूँ?" बहुत डराया, पर तोते ने कुछ नहीं कहा। गुस्से में शम्बर ने तोते को मार दिया।

जब काफ़ी देर बाद, तोता वापिस न आया, तो राजकुमारी को चिन्ता होने लगी। वह सुकुमार के सन्देश की भी प्रतीक्षा कर रही थी। आख़िर उसने अपनी दासियों को भेजा। उन्होंने आकर शम्बर से पूछा—"सुकुमार जी कौन हैं?"

"मैं ही सुकुमार हूँ।" शम्बर ने कहा।

"हमारी राजकुमारी ने आपके पास तोता भेजा था। वह कहाँ है?"

"बिचारे उस तोते को एक बिल्ले ने पकड़ लिया।" शम्बर ने कहा।

दासियों ने सरस्वती के पास जाकर कहा—"हमें अतिथि गृह में एक व्यक्ति दिखाई दिया है, जो अपने को सुकुमार कह रहा है। उसने बताया है कि हमारे तोते को एक बिल्ला पकड़ ले गया है। वह बड़ा बदसूरत है। बिल्कुल पंडित-सा नहीं लगता। हमें सन्देह हो रहा है।"

तोते ने पहिले ही बता दिया था कि सुकुमार बहुत ख़ूबसूरत है। राजकुमारी को भी सन्देह होने लगा। कुछ भी हो, सच मालूम करने के लिए उसने एक श्लोक विचित्र लिपि में लिखकर, दासी को देते हुए कहा—"इसका जवाब ले आओ।"

वह श्लोक शम्बर पढ़ न सका। वह खौल उठा।

"बात बात पर, राजकुमारी का इस-तरह मेरी परीक्षा करना, मुझे बिल्कुल

पसन्द नहीं है। मैं जवाब नहीं बताऊँगा" उसने कहा।

"हमारे राजकुमारी ने इस लिपि में इसलिए लिखा है, ताकि और कोई न पढ़ सके। बस इतनी ही बात है। यह परीक्षा नहीं है। कृपया उत्तर लिखकर दीजिये। अगर आप चाहें तो आप भी अपनी अलग लिपि में लिखिये।" दासियों ने कहा।

"मैं नहीं लिखूँगा। यह परीक्षा ही है। अगर आपको सन्देह है कि मैं सुकुमार नहीं हूँ, तो यह रही आपके राजकुमारी की भेजी हुई मणियों की माला।" शम्बर ने कहा।

इस बात से दासियों का सन्देह और पक्का हो गया। पर किसी ने न कहा कि वह सुकुमार न था। उसके हाव-भाव से ऐसा लगता था, जैसे उसकी दाढ़ी में ही तिनका हो।

राजकुमारी को भी दासियों की तरह सन्देह हुआ। उसने उसकी एक और परीक्षा ली। उसने अपनी दासियों को एक और ऐसा तोता दिया जो बोल न सकता था। उन्होंने शम्बर के पास आकर कहा– "आपके सिखलाये हुए तोते के चले जाने के बाद, आप से बातचीत करने का कोई रास्ता नहीं रह गया है। एक नई लिपि में जब चिट्ठी लिखी गई, तो आप उसका जवाब न दे सके। कम से कम इस तोते को बोलना तो सिखाइये। यह आप दोनों के बीच में दूत का काम करेगा।"

"क्या मुझे सिर्फ़ यही काम है? मैं इस तोते को बातें करना न सिखाऊँगा। क्योंकि तुम्हारी मालकिन मुझसे शादी नहीं करना चाहती, इसीलिये यह सब बहानेबाज़ी कर रही है।" शम्बर ने कहा। उसके यह कहते ही, सरस्वती भी अच्छी

तरह ताड़ गई कि वह धोखा दे रहा था। इस बीच में एक और अजीब घटना घटी।

राजधानी के पास ही मछियारों का एक गाँव था। उन्होंने एक नया जाल बनाया और उसका उपयोग शुरू करने के लिए पुरोहित से मुहूर्त निश्चित करने के लिए कहा। पुरोहित ने हिसाब लगाकर बताया —"आज आधी रात का समय बहुत अच्छा है।"

आधी रात के समय वे नदी के पास जा नहीं सकते थे। यही नहीं, उन्हें यह भी मालूम हुआ था कि क़िले की खाई में नया पानी भरा गया था। इसलिये ठीक मुहूर्त पर, उन्होंने जाकर खाई में जाल फेंका। पर जब वे जाल खींचने लगे, तो उन्हें कोई चीज़ बहुत भारी-सी लगी। उन्होंने सोचा कि जाल में बहुत-सी मछलियाँ फँसी हैं। पर जब उन्होंने जाल खींचा तो उसमें उन्हें एक मनुष्य दिखाई दिया। पहिले तो उन्होंने सोचा कि वह शव था। पर जब उन्होंने उसे गौर से देखा तो मनुष्य का शरीर अभी गरम था। दिल भी धड़क रहा था।

वह सुकुमार ही था। शम्बर के पत्थर बाँधकर, उसे फेंक जाने के थोड़ी देर बाद

ही मछियारों ने उसे अपने जाल में खींच लिया था।

जब उन्हें पता लगा कि अभी वह मनुष्य जीवित है, मछियारे उसे अपने गाँव ले गये। उसके सिर की मरहम-पट्टी की और सुकुमार को मरते मरते बचाया। दो-चार दिन, उसकी अच्छी तरह सेवा-शुश्रूषा करने के बाद वह फिर स्वस्थ हो गया। परन्तु वह उन्हें यह कहता शर्माया कि वह कौन था। इसलिये वह उन्हीं के साथ रहने लगा। रोज़ उनके साथ नदी जाता और नाव खेता।

और इधर शम्बर कहता जा रहा था कि वह सुकुमार था। वह राजा से भी कहने लगा कि वह सरस्वती का उसके साथ विवाह करे। सरस्वती विवाह के लिये मान गई। उसने मुहूर्त निश्चित करने के लिए कहा, घोषणा करवाने के लिये कहा। दूर दूर से पंडितों को निमन्त्रित करने के लिये भी उसने पिता से कहा। उसने सोचा था कि घोषणा सुनकर सुकुमार अवश्य आयेगा। नहीं तो निमन्त्रित पंडित आसानी से इसकी धोखेबाज़ी पकड़ लेंगे।

सुकुमार को यह कुछ भी न मालूम हुआ। एक दिन जब वह नदी में नाव चला रहा था, तो कुछ पंडित नाव में, उस पार से इस पार आये। उनकी बातों से जब उसे मालूम हुआ कि आज ही उसका राजकुमारी से विवाह होगा, तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरे बिना राजकुमारी किससे शादी करेगी, यह देखने के लिए नाव किनारे बाँधकर वह भी पंडितों के साथ राजधानी गया।

विवाह में राजा भोज, कई महाराजा और कई विद्वान आये थे। शम्बर को दुल्हा बनाकर बिठाया गया था। उसको देखते ही, कई जान गये कि वह सुकुमार न था। जो काशी नगर के थे, और सुकुमार के मित्र थे, तुरत उन्होंने यह दिखाने के लिए कि उसमें कुछ भी पांडित्य नहीं है, शम्बर से कई प्रश्न पूछे। शम्बर कोई जवाब न दे पाया। सभा में शोर होने लगा। राजा ने शम्बर के पास आकर पूछा—"तुम कौन हो? तुम्हारा असली नाम क्या है?" शम्बर भय के मारे काँपने लगा। उसने सच बता दिया।

राजा को उसकी कहानी सुन बड़ा गुस्सा आया। उसने आज्ञा दी—"जाओ, इसका सिर काट दो।"

यह सब सुकुमार एक कोने में खड़ा देख रहा था। उसने आगे बढ़कर कहा—"महाराज! आप उसे क्षमा कीजिये। उसने अनजाने ही यह किया है। उसके माँ-बाप बहुत सम्माननीय हैं। मैं सुकुमार हूँ। मैं उसे क्षमा करता हूँ।"

सरस्वती की एक सहेली ने सुकुमार को पहिचान लिया। राजा ने शम्बर को छोड़ दिया। उसी दिन सरस्वती और सुकुमार का धूमधाम से विवाह हुआ।

विश्वास-पात्र

गंगा के किनारे ठंडापुर और सफ़ेदपुर नाम के दो ज़मीन्दारी गाँव थे। दोनों गाँवों के ज़मीन्दार दूर के रिश्तेदार थे, इसलिए वे एक दूसरे को देखने आते और दो चार दिन रहकर चले जाते।

एक बार ठंडापुर का ज़मीन्दार सफ़ेदपुर के ज़मीन्दार को देखने आया। शाम को दोनों आँगन में बैठे बात कर रहे थे कि सफ़ेदपुर के ज़मीन्दार का पशु-पालक, रंगलाल गौ-भैंसों के झुण्ड को हाँकता हुआ आया।

रंगलाल को देखते ही मालिक ने पूछा —"हमारा मेढ़ा कहाँ है?

"आ रहा है मालिक।" रंगलाल ने सीटी बजायी। तुरन्त एक सफ़ेद मेढ़ा गले की घंटी बजाता, उछलता-कूदता आया। पहिले वह रंगलाल के पास गया। फिर ज़मीन्दार के पास गया। ज़मीन्दार ने उसे सहालते हुए, जेब में से मुट्ठी भर चने निकालकर उसके सामने रखे। चना खाकर, मेढ़ा चला गया।

ज़मीन्दार ने अपने अतिथि की ओर मुड़कर कहा—"मेरे लिये और सब पशु एक तरफ़ हैं, और यह मेढ़ा एक तरफ़। अगर उसे कोई हज़ार रुपये देकर खरीदना चाहे तो भी न बेचूँ। इस जैसा मेढ़ा आसपास के इलाके में कहीं नहीं है। सच पूछा जाय तो उसको इस तरह पाल-पोस कर बड़ा करने का श्रेय रंगलाल को ही मिलना चाहिये। उसके जैसा, विश्वास-पात्र कहीं मिलना असम्भव है।"

यह सुन, ठंडापुर के ज़मीन्दार ने हँसते हुए मज़ाक में कहा—"कहीं आप पागल तो नहीं हो गये हैं? भला नौकरों में

श्रीमती डी. मंजुलता

"आपकी नादानी पर मुझे हँसी आ रही है। मुझे तीन दिन दीजिये। मैं साबित कर दूँगा कि वह झूट बोलता है। क्या कहते हैं?" अतिथि ने कहा।

"आप कभी यह साबित नहीं कर सकते?" सफ़ेदपुर के ज़मीन्दार ने कहा। दोनों में बात बढ़ी और शर्त लग गई। अगर यह साबित कर दिया गया कि रंगलाल झूट बोला है तो सफ़ेदपुर के ज़मीन्दार को ठंडापुर के ज़मीन्दार को हज़ार रुपये देने होंगे। अगर न हुआ तो ठंडापुर के ज़मीन्दार को, सफ़ेदपुर के ज़मीन्दार को हज़ार रुपये देने होंगे।

वफ़ादारी होती है! सब के सब चोर हैं; मौका मिले तो चोरी करने से नहीं चूकते।"

यह सुन सफ़ेदपुर के ज़मीन्दार को आश्चर्य हुआ। उसने कहा—"रंगलाल वैसा आदमी नहीं है। जान जाये पर वह झूट नहीं बोल्ता।"

"तो क्या कभी वह आपसे झूट नहीं बोला है?" अतिथि ने पूछा।

"कभी नहीं! न मुझ से, न किसी और से वह झूट बोला है।" सफ़ेदपुर के ज़मीन्दार ने कहा।

"आपसे ज़रूर मैं हज़ार रुपये जीत लूँगा। पर जब तक शर्त पूरी न हो जाये, तब तक यह बात किसी और आदमी को न मालूम हो।"—अतिथि ने कहा। सफ़ेदपुर का ज़मीन्दार यह भी मान गया।

ठंडापुर के ज़मीन्दार ने अपने नौकर सोमलाल से सारी बात कही और उससे पूछा—"सोमलाल! कोई ऐसी बात बताओ जिससे हम यह शर्त जीत सकें!"

सोमलाल अच्छी आफ़त में फँसा। अगर मदद करता है, तो मालिक यह

सोच सकता है कि वह धोखेबाज़ है। इसलिये उसने कहा—"मालिक! मेरी भी क्या हस्ती है कि आपको सलाह दूँ!" ज़मीन्दार यह जान गया कि सोमलाल क्यों आनाकानी कर रहा था। उसका सन्देह दूर करने के लिए उसने कहा—"अगर तूने यह शर्त मुझे जीतने दी, तो मैं तुझे सौ रुपये दूँगा।"

"अच्छा, मालिक! रंगलाल क्या आकाश से उतरा है? पैसे का लालच दिखाइये, और जो चाहे वह करवाइये।" सोमलाल ने हिम्मत बाँधकर कहा।

"अच्छा तो देख! तुझे दो सौ रुपये देता हूँ। उस मेढ़े को खरीद ले।" कहते हुए ठंडापुर के ज़मीन्दार ने सोमलाल को दो सौ रुपये दिये।

सोमलाल ने रंगलाल के बारे में सब कुछ मालूम कर लिया। उसको कैसे फँसाया जा सकता था, वह जान गया।

कुछ दिनों से, रंगलाल की लक्ष्मी नाम की लड़की से शादी करने की बात चल रही थी। दोनों शादी के लिए मान गये थे। पर रंगलाल बड़ा गरीब था। रहने के लिए घर भी न था। ज़मीन्दार की पशु-शाला में ही रहा करता था। लक्ष्मी के पिता के पास एकाध बीघा ज़मीन थी।

"अगर तुम मेरी लड़की से शादी करना चाहते हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु पहिले, छोटा-सा घर वगैरह बना लो। उसके बाद शादी की बात पूछना।" लक्ष्मी के पिता ने कहा।

रंगलाल घर और ज़मीन कमा न सका। वह एकान्त में, लक्ष्मी से कभी कभी बातचीत करता और पूछता—"शादी के बारे में क्या कहती हो?" लक्ष्मी अपने

पिता की बात उसे याद दिलाती। और रंगलाल सिर नीचा करके चला जाता।

यह बात सोमलाल को मालूम हो गई। उसने लक्ष्मी के घर जाकर अकेले में उससे बात की।

"सुना है, तू और रंगलाल शादी करने जा रहे हैं? अच्छी जोड़ी है। मैं सब जानता हूँ।" सोमलाल ने कहा।

"यह शादी शायद मेरे जीते जी नहीं होगी।" लक्ष्मी ने सारी बात सोमलाल को बता दी। उसने कहा—"क्या इतनी-सी बात पर शादी रुकी हुई है? दो सौ रुपये मिल जाये तो एक छोटा-मोटा घर और थोड़ी बहुत ज़मीन खरीदी जा सकती है।"

"दो सौ रुपये नहीं हैं, तभी तो इतनी मुसीबत है!" लक्ष्मी ने कहा—

"हैं क्यों नहीं? तुम भी क्या नादान हो। उसे उस सफ़ेद मेढ़े को मुझे बेचने को कहो और मैं अभी दो सौ रुपये दे देता हूँ।" कहते हुए सोमलाल ने रुपये की थैली लेकर ठनठनाई।

लक्ष्मी को रुपयों की ठनठनाहट सुनकर लालच हुआ। "पर वह तो ज़मीन्दार साहब का मेढ़ा है न? रंगलाल कैसे बेच सकता है?"—उसने पूछा।

"यही तो पागलपन है। उस मेढ़े को रंगलाल ने पाल-पोस कर बड़ा किया है। वह कैसे ज़मीन्दार का हो सकता है? तू उस मेढ़े को भेंट में माँग और जब वह तेरा हो जाये तब मुझे बेच देना। पहिले ही पैसे ले ले।" सोमलाल ने कहा।

सोमलाल की चाल, लक्ष्मी पर पूरी तरह चल गई। जब उस दिन शाम को रंगलाल उससे बात करने आया, तो उसने पूछा—"शादी की बात कैसे रही?" लक्ष्मी ने

कहा—"वह तेरे हाथ में ही है।" रंगलाल ने आश्चर्य से पूछा—"अगर मेरे हाथ में होती तो कभी का मैं घर बना लेता और थोड़ी बहुत ज़मीन भी खरीद लेता।"

"तुम्हारे मेढ़े के लिए अच्छा भाव आया है। दो सौ रुपये मिलेंगे। हम उससे घर और ज़मीन खरीद सकते हैं। शादी रोकने की कोई जरूरत नहीं है"—लक्ष्मी ने कहा।

"बेचने के लिए, क्या वह मेढ़ा मेरा अपना है? यह बात भूल जा। भले ही शादी न हो, पर मैं वह मेढ़ा नहीं बेचूँगा।"—रंगलाल ने कहा।

लक्ष्मी ने मन मसोसकर कहा—"अच्छा तो न बेचो! मैं बेशर्म होकर कहती हूँ कि मेढ़ा मुझे भेंट में दे दो।"

रंगलाल को बड़ा दुख हुआ। उसने कहा—"लक्ष्मी! मैं जान दे दूँगा, पर वह मेढ़ा न दे सकूँगा। बुरा न मानना।" कहते हुए वह जाने के लिए मुड़ा।

लक्ष्मी ने आँसू बहाते हुए, उसे बुलाया। "मैंने कभी यह न सोचा था कि तुम इतने कड़े दिल के हो। मैंने सोचा था कि यह कभी हो सकता है कि मैं माँगू और तुम न दो, इसलिए भाव मानकर मैंने पहिले पेशगी भी ले ली है। अब मैं कहाँ की रही?" उसने रुपयों की थैली, रंगलाल को दिखाई।

रंगलाल कुछ देर तक भौंचका रहा। फिर उसने पूछा—"तुझे किसने रुपये दिये हैं।"

"ठंडापुर के ज़मीन्दार के नौकर सोमलाल ने।"—लक्ष्मी ने बताया।

रंगलाल ने कुछ सोचकर कहा—"तेरी बात भला क्यों जायेगी लक्ष्मी! जान जाये

पर वचन न जाये। कल दो पहर तक मैं तुझे मेढ़ा दे दूँगा। तू अपना वचन रख।"

अगले दिन के ख़तम होने से पहिले सफ़ेदपुर के ज़मीन्दार का मेढ़ा, ठंड़ापुर के ज़मीन्दार का हो गया।

उस दिन शाम को, रोज़ की तरह दोनों ज़मीन्दार आँगन में बैठे थे। रंगलाल पशुओं को हाँकता उस तरफ़ आया।

सफ़ेदपुर के ज़मीन्दार ने जेब में से कच्चे चने निकालते हुए पूछा—"मेढ़ा कहाँ है?"

"उसे बेच दिया है, मालिक।"—रंगलाल ने कहा।

ज़मीन्दार थोड़ी देर तक हैरान रहा। फिर उसने पूछा—"यह क्या! मुझसे बिना कहे क्यों बेचा!"

"मालिक जल्दी में मुझे कुछ न कहिये। मैं जिसके साथ शादी करना चाहता था उस लक्ष्मी के कारण मुझे यह करना पड़ा। उसको ठगनेवाला एक और दुष्ट है। अगर वह खुद मेढ़े को दे दें तो मैं उसका नाम न बताऊँगा।" कहते हुए रंगलाल ने एक बार सोमलाल की ओर देखा। फिर उसने सिवाय सोमलाल के नाम के सब कुछ बता दिया।

सब सुनने के बाद ठंड़ापुर के ज़मीन्दार ने सोमलाल से कहा—"मूर्ख कहीं का! कौन सा यह बड़ा काम किया है तूने! मैं शर्त भी हारा और तू रंगलाल से झूट भी न बुलवा सका। सचमुच वह विश्वासपात्र है। उसका मेढ़ा उसे वापिस कर दो। रंगलाल! जो दो सौ रुपये लक्ष्मी को दिये हैं, वे अपने पास रख, और घर-बार ख़रीद ले। तुम दोनों सुख से रहो।"

सफ़ेदपुर के ज़मीन्दार ने रंगलाल के विवाह में बड़ी मदद दी। लक्ष्मी और रंगलाल की धूमधाम से शादी हुई।

मित्र-भेद

जीव तलैया के सारे जब
लगे शोक से करने हाय,
तब बगुले ने कहा—'बताता
एक अभी हूँ तुम्हें उपाय :

बहुत बड़ा भारी पोखर है
थोड़ी ही दूरी पर एक,
कष्ट न होगा वहाँ कभी भी
तुम लोगों को जल का नेक!'

यह सुन सारे जल-जीवों ने
लिया शीघ्र बगुले को घेर,
चिल्लाने सब लगे—'वहाँ अब
पहुँचाने में करो न देर!'

रोज़ शाम को ले इक मछली
उड़ता बगुला पच्छिम ओर,
और मारकर उसे शिला पर
खाते-सोते करता भोर।

यों कुछ दिन में एक एक कर
सभी मछलियाँ हुईं खतम,
कहा केकड़े ने तब उससे—
"मुझ पर भी अब करो रहम।'

बगुले ने विनती सुन उसकी
लिया पीठ पर उसे चढ़ा,
और वहाँ से उड़ता उड़ता
जिधर शिला थी उधर बढ़ा।

पास शिला के लगी हुई थी
मछली के काँटों की ढेर,
देख केकड़े ने सोचा यह—
नहीं मृत्यु में अब है देर।

बोला बगुले से वह धीमे—
'पोखर अब कितना है दूर?
पूछ रहा इसलिए कि तुम अब
थक कर हो जाओगे चूर।'

हँसकर बोला बगुला उससे—
'मूर्ख, पोखरे को जा भूल;
अभी पेट में तेरे भी तो
मारूँगा चोंचों के शूल!'

श्री 'भारतीभक्त'
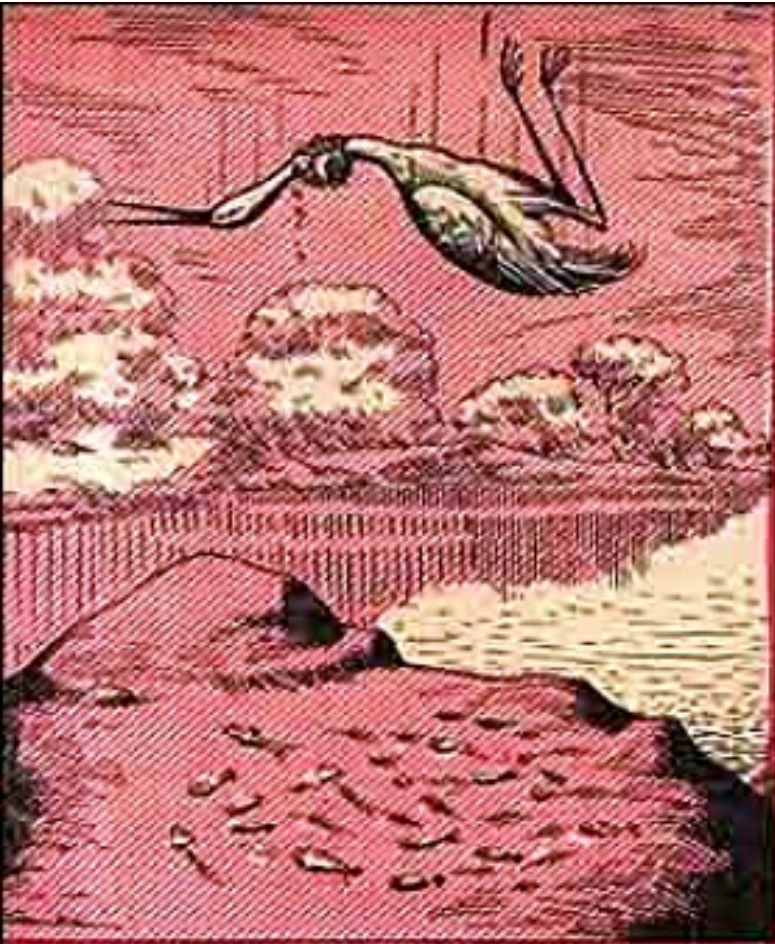
यों यह पापी बगुला अपनी
पूरी भी कर सका न बात,
इतने में कोमल गर्दन पर
गड़े केंकड़े के दो दाँत।

मुहँ से उसके निकल न पाया
शब्द एक भी तब तो हाय,
उसी शिला पर गिरा आप ही
छटपट करता निरुपाय।

इसीलिए हे करटक, जानो
बल से भी है बुद्धि महान;
बुद्धिशील ज्यादा जो जग में
वही बली से भी बलवान।

बुद्धिहीन बलशाली को तो
बुद्धिमान ही करे परास्त,
जैसे छोटे खरहे ने था
किया शेर को कभी परास्त।

सुन्दरवन में किसी समय में
रहता था बलशाली शेर,
प्रति दिन मार मृगों को
करता रहता था वह ढेर।

उसके कारण उस जंगल में
मचता रहता था अवरोध,
आखिर एक दिवस जीवों ने
मिलकर किया शेर से अनुरोध—

'नहीं एक से अधिक जीव को
एक दिवस में मारें आप,
रोज़ हम्हीं में से कोई
पहुँच जायगा अपने आप।'

मान गया वह शेर, उसे तो
सिर्फ़ चाहिए था आहार;
घर बैठे ही उसको तब से
रोज़ लगा मिलने आहार।

एक रोज़ जब पारी आयी
खरहे की तो चला उदास,
कुआँ दिखायी पड़ा राह में
एक उसे तब बिलकुल पास।

झट उसमें उसने झाँका तो
दीख पड़ा अपना आकार,

जिससे सहसा उसको सूझा
मन में नूतन एक विचार।

अब तो निर्भय होकर खरहा
लगा घूमने इधर उधर,
और शाम को गया उधर, था
भूखा बैठा शेर जिधर।

खरहे को लखते ही तत्क्षण
गरज उठा वह क्रोधित शेर,
'शीघ्र बता, ऐ खरहे, तुमने
कर डाली क्यों इतनी देर!'

'एक दूसरा शेर मिला था
जो कहता खुद को वनराज,
रोक लिया यह कहकर मुझको—
खाऊँगा तुमको ही आज!

बात आपकी छेड़ी अब तो
हुआ बहुत ही सहसा क्षुब्ध,
बुला अभी ला निज स्वामी को
बोला होकर अति ही क्रुद्ध।

इसीलिए हे स्वामी मेरा
नहीं ज़रा भी इसमें दोष,
निबट उसी से लें अब जल्दी
नहीं करें यों मुझ पर रोष!'

शेर गरजता तब यह बोला—
'बता, कहाँ है वह गुस्ताख़?
जीभ काटकर अभी निकालूँ
उसकी मैं अब दोनों आँख!'

खरहा बोला—'स्वत्व हेतु तो
लड़ना बिलकुल ही है ठीक,
लेकिन वह तो दुर्ग बीच में
बैठा है होकर निर्भीक!'

इतना कह के गया शेर को
वह कूएँ के बिल्कुल पास,
कहा—"इसी में है वह बैठा,
लें देख, हो न यदि विश्वास।"

कूएँ के जल में निज छाया
लख, उसे शेर ही जान,
गरजा, कूदा और डूबकर
दिये शेर ने अपने प्राण!

नाविक सिन्दबाद

पाँचवीं समुद्र-यात्रा

मैंने चार बार समुद्र यात्रा की और चारों बार मुझे बेहद लाभ हुआ। मेरा यह विश्वास-सा हो गया कि भले ही मैं कितनी ही मुसीबतें झेलूँ अन्त में मुझे फ़ायदा ही होगा, और अपूर्व अनुभव मिलेगा। इसलिए मैं कुछ दिन आराम से घर में रहता रहा। फिर पाँचवीं समुद्र यात्रा के लिए मैं तैयार होने लगा।

इसलिये मैं बज़ार गया और मैंने कुछ ऐसी चीज़ें खरीदीं जो लाभ के साथ बेची जा सकती थीं। उनके गट्ठर बँधवाकर, मैं माल लेकर बसरा पहुँचा। मैं जब बसरा पहुँचा तो वहाँ एक नया जहाज़ बिकाऊ था। उसे देखकर मैं बड़ा खुश हुआ। तुरत भाव करके, मैंने वह जहाज़ खरीद लिया। फिर मैंने एक अनुभवी कप्तान और कुछ खलासियों को नियुक्त किया। अपने गुलामों से जहाज़ पर माल लदवा दिया। इन गुलामों को, सफ़र में साथ रखने के लिए मैं घर से लाया था। मैं जब जाने को तैयार था तो कुछ व्यापारियों ने मेरे साथ

आना चाहा। उन्होंने सफ़र का खर्च पहिले ही मुझे दे दिया। क्योंकि इस बार जहाज़ मेरा अपना था, इसलिये मैंने सोचा कि मैं स्वयं कप्तान को ठीक सलाह दे सकूँगा। मुझे समुद्र यात्रा के बारे में काफ़ी अनुभव हो गया था।

हम बसरा से बड़े जोश में निकले। हवा भी अनुकूल थी। समुद्र शान्त था। हमारा जहाज़, कई बन्दरगाहों में रुका। हर जगह खूब खरीद-फ़रोख़्त हुई। आख़िर हमने एक निर्जन द्वीप के पास लंगर डाला। व्यापारी उतर कर द्वीप देखने गये। वहाँ उन्हें एक विशाल पक्षी का विशाल अंडा दिखाई दिया। उन्हें न मालूम था कि वह क्या चीज़ थी। उन्होंने उस पर पत्थर फेंके। वह टूट गया और उसमें से बच्चे का पैर बाहर निकल आया। बिचारे व्यापारी क्या जानते थे कि वह क्या चीज़ थी। उन्होंने उस बच्चे को बाहर निकाला। और उसके टुकड़ों को आपस में बाँट कर वे जहाज़ पर वापिस चले आये।

जब मैंने उनके कारनामों के बारे में सुना तो मैं बहुत घबरा गया। "तुमने तो सत्यानाश कर दिया। इस बच्चे के माँ-बाप जल्दी ही वापिस आयेंगे और जब उन्हें मालूम होगा कि आप लोगों ने क्या किया है, वे आकर हमें मार देंगे। आप उन पक्षियों के बारे में नहीं जानते। सिवाय जल्द से जल्द यहाँ से भागने के अब और कोई रास्ता नहीं है।" कहते हुए मैंने जहाज़ के पाल उठवा दिये। और दूर समुद्र में निकल गये।
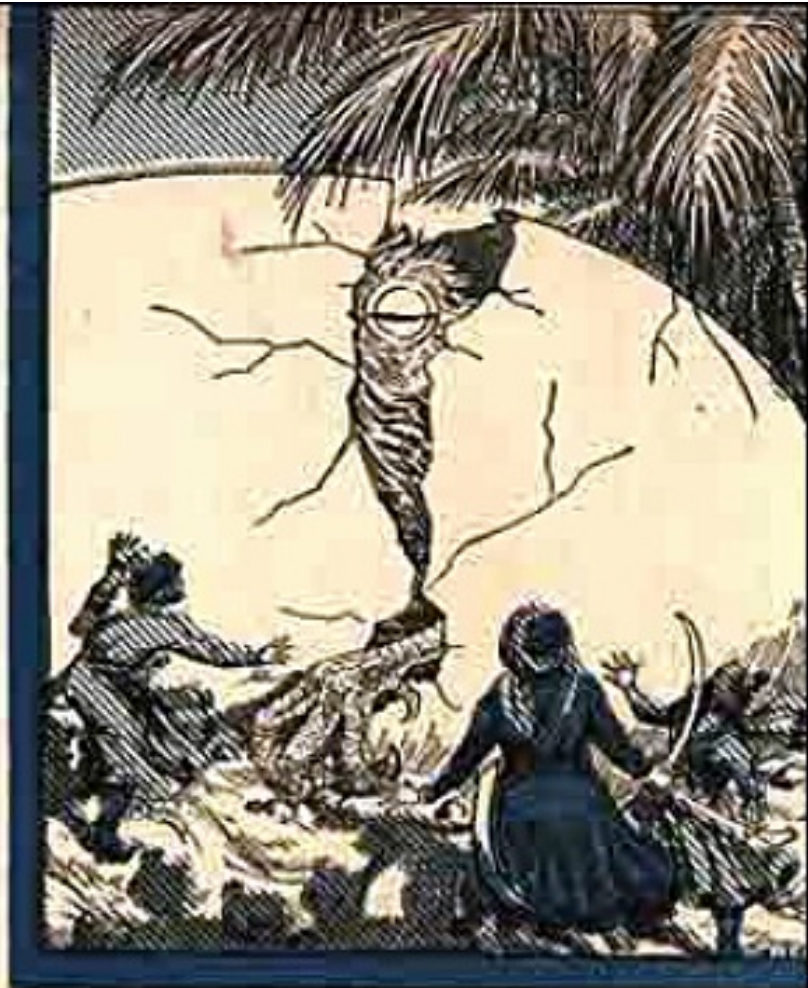
इस बीच, उस पक्षी के टुकड़ों को उन्होंने पकवाया। पर जब वे खाने जा रहे थे, तो उन्हें ऐसा लगा, जैसे आकाश में सूर्य को बादलों ने घेर लिया हो। जब

वे हमारे नजदीक आने लगे तो हमें मालूम हो गया कि वे विशाल पक्षी थे। उनके पँखो के चलाने और चीखने-चिल्लाने से, सारा आकाश गूँज रहा था। जब वे हमारे ऊपर, नीचे उड़ रहे थे तो हमें उनके पंजों में, दो बहुत बड़े—हमारे जहाज़ से भी बड़े पत्थर दिखाई दिये। मैं जान गया कि वे कैसे हमसे बदला लेना चाहते थे।

देखते देखते एक पक्षी ने अपने पंजे को बड़ा पत्थर, ठीक जहाज़ पर छोड़ा। पर हमारे कप्तान ने जहाज़ को होशियारी से एक तरफ़ हटा दिया। पत्थर जहाज़ पर न गिरा। जहाँ वह गिरा, इतना बड़ा गढ़ा बन गया कि हमें समुद्र की तह तक दीखी। उस पत्थर के कारण इतनी बड़ी बड़ी लहरें उठीं कि जहाज़, खोखली लकड़ी की तरह डाँवाडोल हो गया। हम सब के होश हवास भी उड़ गये।"

इतने में एक और पत्थर पक्षी ने छोड़ दिया। पत्थर की चोट से जहाज़ का आधा भाग चकनाचूर हो गया। और जो पत्थर के नीचे चटनी होने से बच गये थे, वे समुद्र में डूब रहे थे। मैं भी जान

बचाने के लिए, ज़र्मीन आसमान एक कर रहा था। मुझे सौभाग्य से एक लकड़ मिला। मैं उसकी सहायता से तैरता रहा। उस पर चढ़कर, पैरों को चप्पू की तरह चलाता हवा में, लहरों के सहारे एक द्वीप में पहुँचा। एक घंटा रेती पर पड़ा रहा। मुझमें हिलने डुलने का भी होश न रहा। थोड़ी देर बाद जाकर जान में जान आई। फिर उठकर, मैं द्वीप देखने गया।

वह द्वीप सचमुच स्वर्ग की भाँति था। जिधर देखो, उधर, पेड़ों पर पके फल लटक रहे थे। रंग-बिरंगे पक्षी चहचहा रहे थे। भूमि पर फूल ऐसे लगते थे, जैसे रंग-बिरंगी, सुन्दर कालीन बिछा दी गई हो। सारा द्वीप चमक-सा रहा था। मैंने तुरत कुछ फल तोड़कर खाये, नाले में पानी पिया और फूलों की कालीन पर लेट कर आराम किया।

अन्धेरा होने के समय मैं जागा। यद्यपि चारों ओर अच्छा वातावरण था, फिर भी उस द्वीप में, अपने को अकेला पा मैं घबरा रहा था। उस दिन रात को मैं ठीक तरह सो न सका। नींद में भयंकर सपने देखे। सवेरा हुआ। जैसे तैसे मेरी

फ़िक्र कुछ कम हुई। मैं उठकर द्वीप में इधर उधर घूमने-फिरने लगा।

मैं जल्दी चलकर एक नाले के पास आया। उसमें पानी गिर रहा था। नाले के किनारे पर एक बूढ़ा बैठा हुआ था। पत्तों का दुशाला बनाकर वह ओढ़े हुये था। "शायद कोई नाविक होगा। जहाज़ डूब गया होगा और यह किनारे आ लगा होगा" मैंने सोचा।

मैंने बूढ़े के पास जाकर बात छेड़ी। उस बूढ़े ने इशारा ही किया, वह बोला नहीं। "क्यों भाई! यहाँ कैसे आये हो?" मैंने पूछा। उसने सिर एक तरफ़ फेरा, और इस तरह संकेत किया कि मैं उसे अपने कन्धों पर चढ़ाकर, उस नाले के पार ले जाऊँ। वह वहाँ लगे पेड़ों के फल खाना चाहता था।

मुझे ऐसा लगा कि अगर मैं इस बूढ़े की मदद करूँ, तो मेरी मदद फ़िज़ूल नहीं जायेगी। मैंने झुककर, उसे अपने कन्धे पर बिठा लिया। उसने अपने जाँघें मेरे गले के दोनों ओर डाल दीं, पैर लपेटकर उसने मेरी छाती पर रख दिये; अपने हाथों में उसने मेरा सिर ले लिया। मैंने नाला पार कर लिया। मैंने उससे कहा—"धीमे से उतरिये।" पर वह न उतरा। उतरना तो अलग, वह अपनी जाँघों से मेरा गला घोंटने लगा और जमकर बैठ गया।

मुझे आश्चर्य हुआ। पैरों को ग़ौर से जो देखा तो वे काले, बालोंवाले भैंस के खुर से लगे। मुझे डर लगा। मैंने उसे नीचे गिराना चाहा। पर उस आदमी ने मेरा गला और ज़ोर से घोंट दिया। मेरी साँस बन्द-सी हो गई। आँखों के सामने अन्धेरा छा गया। मैंने एक बार और जी-तोड़ कोशिश की, पर बेहोश गिर गया।

जब मुझे फिर होश आया, तब भी वह बूढ़ा मेरे कन्धों पर चढ़ा हुआ था। पर उसने अपने पैर कुछ ढ़ीले कर दिये थे, ताकि मैं साँस ले सकूँ। मुझे साँस लेता देख, बुढ़े ने मेरी छाती पर एक लात मारी। मैं उठकर खड़ा हो गया। फिर उसने आगे झुककर हाथ से इशारा करके मुझे एक पेड़ के पास जाने के लिए कहा। मैंने वैसा ही किया। वह पेड़ पर से फल चुन चुनकर आराम से खाने लगा। अगर मैं उसकी इच्छा के विरुद्ध कहीं रुकता, या ज़्यादह तेज़ी से चलता, तो वह छाती पर लातें मारता। मैं आख़िर ऐसे चलने लगा, जैसे वह मुझे लगाम पकड़कर चला रहा हो। मैं उसको दिन भर गधे की तरह ढ़ोता रहा। जब रात को मैं सोया, तब भी वह मेरे कन्धों पर से न उतरा। सुबह होते ही उसने मेरी छाती पर लात मारकर मुझे जगाया।

उस दिन और रात भर मैं उसे ढ़ोता रहा। हाथ-पैर से मार कर, उसने मुझसे जो कुछ करवाना चाहा, करवाया। इस बूढ़े की सेवा करने के लिए जो कष्ट और अपमान मैंने सहे, जीवन में कभी न सहे थे। उसमें जो ताकत थी, वह जवानों में न होगी। गधे हाँकनेवाले भी उससे अधिक उदार होंगे। उससे छुटकारा पाने का रास्ता मुझे न दिखाई दिया। "इस बूढ़े पर भला मुझे क्यों दया आई! इससे अच्छी मौत ही है।" इसी फ़िक्र में वह जिधर मुझे हाँकता, मैं उस तरफ़ जाता।

कई सप्ताह बीत गये। जब मैं उसे ढ़ोकर ले जा रहा था, तो पेड़ों के नीचे, मुझे एक जगह लौकी की बेल दिखाई दी। उस पर बड़ी बड़ी लौकियाँ लगी हुयी थी। उसमें से एक सूखी लौकी मैंने ली। उसमें से

बीज निकाल कर, उसे खोखला कर दिया। उसे साफ़ करके, मैंने उसमें अँगूर का रस डाल दिया। फिर उसमें मैंने एक डाट लगा दी। और उसे धूप में रख दिया। थोड़े दिनों में, वह रस शराब बन गया। फिर जब कभी मौका मिलता, उसमें से शराब लेकर मैं पीता। मेरा यह ख्याल था कि उस शराब के नशे में बूढ़े को आसानी से ढ़ोया जा सकता था। क्योंकि मैं थोड़ा ही पीता था, इसलिए जोश आ जाता था, नशे में चूर नहीं हो जाता था। उस नशे में, उस बोझ के साथ मैं इधर उधर दौड़ता, गाता-नाचता। अपना नाच देखकर, मैं स्वयं तालियाँ बजाता। मेरी तालियों की ध्वनि से आस पास का प्रदेश प्रतिध्वनित होता।

बूढ़े ने मेरा जोश देखकर, शराब देने के लिए कहा। अगर मैं उसे देखकर न डरता, तो उसे देता भी न। उसने पहिले थोड़ी सी शराब चखी। फिर उसने लौकी खाली कर दी और उसे पेड़ों के बीच में फेंक दिया।

जल्दी ही उसका सिर चकराने लगा। वह मेरे कन्धों पर नाचने लगा। फिर वह कुछ थक-सा गया। उसके मसल ढ़ीले पड़ गये। वह कन्धे पर ठीक तरह न बैठ सका। नशे में इधर उधर झूमने लगा। ज्योंही उसकी पकड़ ढ़ीली हुई, त्यों ही गले में से उसके पैर निकाल कर, ज़ोर से उसे मैंने दूर फेंक दिया। वह जहाँ गिरा था, वहीं पड़ा रहा। मैंने भी एक बड़ा पत्थर लिया और उससे उसका सिर चकनाचूर कर दिया। वह मर गया। मैं उसके चुँगल से छूट गया। मैं नहीं जानता कि अल्लाह उसको माफ़ करेगा। (अभी और है)

[६]

[ग्रीक सेना ने ट्रोय नगर को नौ वर्ष तक घेरे रखा। पर कोई खास युद्ध नहीं हुआ। इस बीच, ग्रीक सेना के अग्रणी, वज्रकाय, ट्रोय नगर की राजकुमारी प्रमोदिनी को देखकर उससे प्रेम करने लगा। ग्रीक सेना को छोड़ देने से, उसको प्रमोदनी के मिलने की आशा थी। वज्रकाय ने कोई बहाना करके राजा से झगड़ा मोल लिया और मैदान छोड़ दिया। तुरत ट्रोजनों ने ग्रीक पर हमला किया और उनको तहस नहस कर, पीछे हटाकर उनके जहाज़ों में आग लगा दी। बाद में—]

चन्द्रप्रभु की नाव को जलता देख वज्रकाय का खून खौल उठा। उसने अपनी यह प्रतिज्ञा कि न वह, न उसकी सेनाएँ ही ग्रीक लोगो की तरफ़ लड़ेंगी, थोड़ी देर के लिए तोड़ दी। वह दृश्य देखकर उससे न रहा गया। उसने उसी समय अपनी सेना को ग्रीक सेना की सहायता के लिए भेज दी।

इस बीच, पितृकीर्ति नामक ग्रीक योद्धा ने बढ़ती हुई ट्रोजन सेना में खलबली मचा दी। जलते हुए जहाज़ के चारों तरफ़ खड़े ट्रोजनों के बीच में उसने ज़ोर से एक भाला फेंका। वह एक वीर को लगा और वह देखते देखते वहीं ठंडा हो गया। ट्रोजन सेना में खलबली और भी बढ़ गयी।

[एक ग्रीक पुराण कथा]
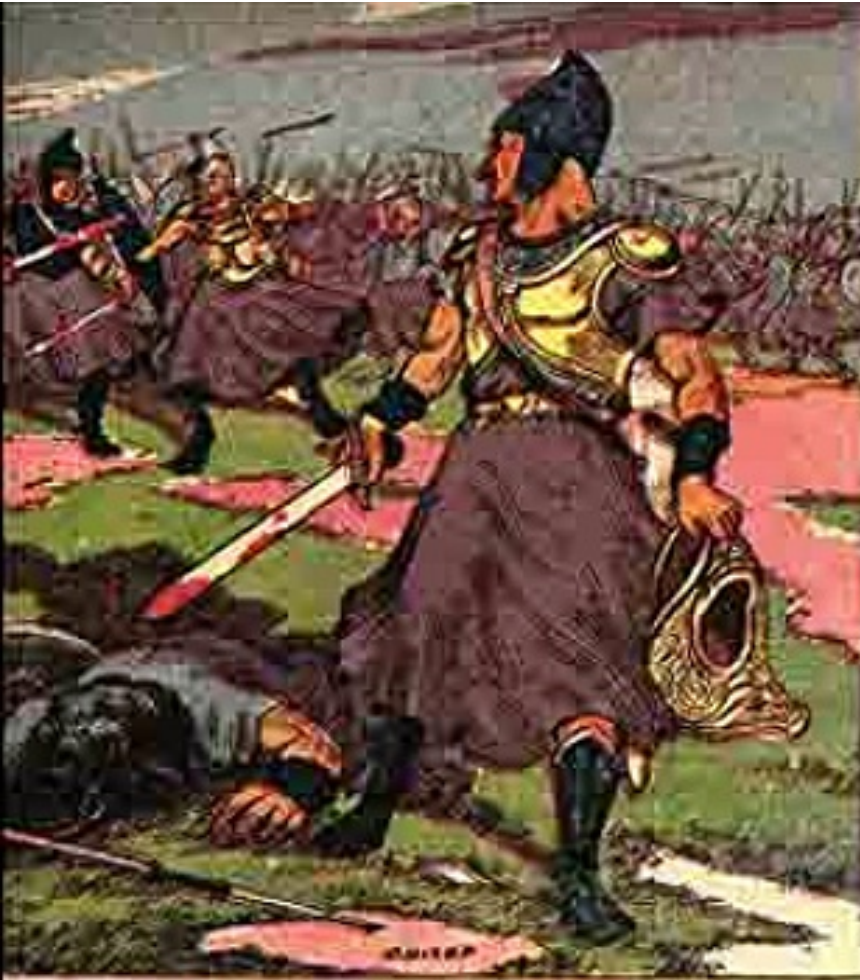
यह देख ट्रोजनों ने सोचा कि वह वज्रकाय की ही करतूत थी, और उन्होंने अनुमान कर लिया कि वह युद्ध में फिर उतर आया था। वज्रकाय के नाम पर ट्रोजन हिम्मत हार बैठते थे। इसलिए वे डर के कारण इधर उधर तितर बितर हो गये। कोई दूसरा मार्ग उनके सामने न था।

ट्रोजनों को हिम्मत बँधानेवाला वहाँ कोई न था। दुर्भाग्य से उससे पहिले मूषब ने वीरसिंह को घायल कर दिया था और वीरसिंह युद्धभूमि छोड़कर ट्रोय नगर वापिस चला गया था।

पितृकीर्ति ने चन्द्रप्रभु के जहाज़ में लगी आग बुझा दी और फिर ट्रोजनों का पीछा करना शुरू किया। क्योंकि उसने वज्रकाय का कवच पहिन रखा था, इसलिए उसको देखकर ट्रोजनों को कोई सन्देह नहीं हुआ। उन्होंने उसको वज्रकाय ही समझा। उसकी बहादुरी को देखकर ट्रोजन सेना चकित थी।

कुछ भी हो पितृकीर्ति ने उस दिन ट्रोय नगर को जीतने का निश्चय किया। नगर के चारों ओर के क़िले की दीवार को फाँदने का उसने तीन बार जी तोड़ प्रयत्न किया। परन्तु ट्रोजनों ने उसे सफल न होने दिया।

अन्धेरे होने तक युद्ध चलता रहा। अन्धेरे में किसी ने पितृकीर्ति की पीठ पर चोट मारी। उसका शिरस्त्राण गिर गया। उसके हाथ का भाला टूट गया। वह निस्सहाय हो गया। यह देखकर एक और ट्रोजन वीर ने उस पर हमला किया। पितृकीर्ति बहुत घायल हो गया, और जब निहत्था वह मैदान छोड़कर उठता-गिरता जा रहा था तो वीरसिंह ने एक ही चोट में उसका काम तमाम कर दिया,

वह तब तक युद्ध के मैदान में वापिस आ चुका था। फिर उसने पितृकीर्ति का कवच निकाल लिया।

ठीक उसी समय प्रताप और भूधव वहाँ आये, और वहाँ पहरा देते रहे, ताकि ट्रोजन पितृकीर्ति की लाश को न ले जायें। फिर वे उसको उठाकर अपने जहाज़ों के पास ले गये।

पितृकीर्ति की मृत्यु के शोक में वज्रकाय स्त्रियों की तरह बिलख बिलख कर रोया। उसकी माँ तटनी उसके लिए एक नया कवच बनाकर, उसको उसके डेरे में दे आई। वज्रकाय उस कवच को पहिनकर राजा के पास गया और उससे उसने समझौता कर लिया। पितृकीर्ति की मृत्यु का बदला लेने के लिए वह फिर युद्ध भूमि में लड़ने चला गया।

वज्रकाय गुस्से के कारण रौद्र रूप धारण किये हुए था। उसके युद्ध में आते ही, ट्रोजन उसका मुक़ाबला न कर सके और मैदान छोड़कर भागने लगे। वज्रकाय ने उन्हें स्कमन्दर नदी की ओर भगा दिया। वैसा करने का एक कारण था। वहाँ उसने ट्रोजनों को दो भागों में
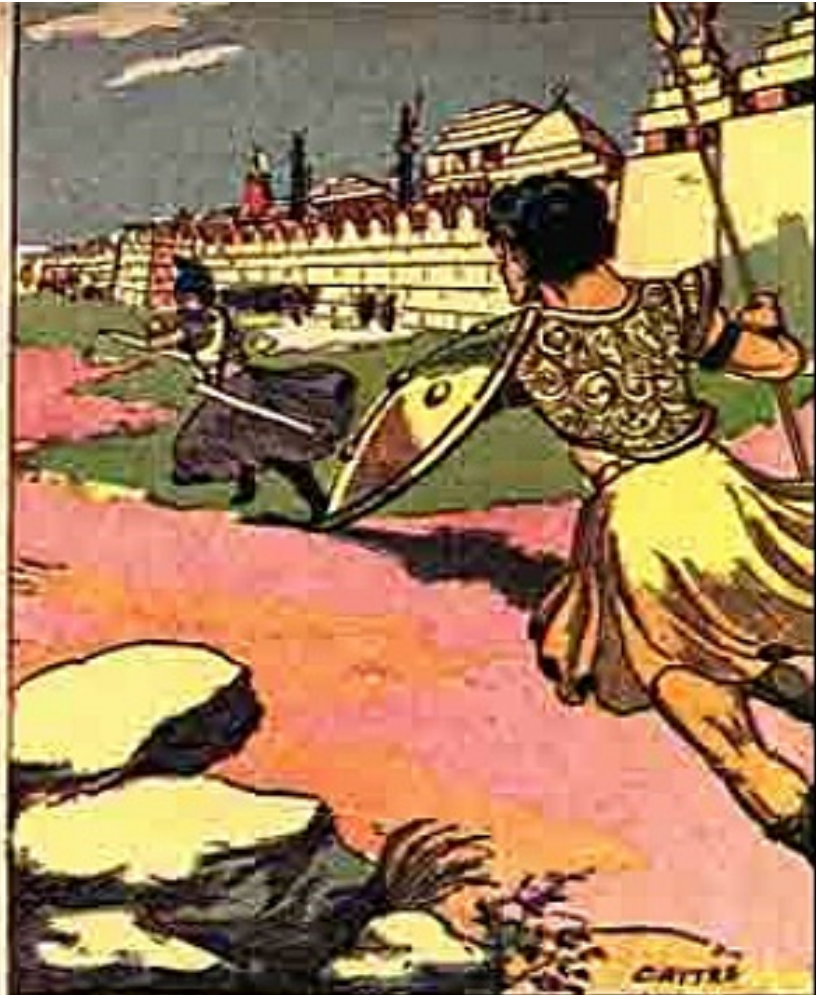
बँटने दिया, और उनको फिर मार-काट दिया। जो बच बचाकर ट्रोजन नगर में पहुँचे, वे भयभीत हरिणों की तरह लगते थे।

ग्रीक सेना का अग्रणी था वज्रकाय। और ट्रोजनों का अग्रणी था वीरसिंह। परन्तु उन दोनों का अब तक आपस में मुक़ाबला न हुआ था। अब उनमें मुठभेड़ हुई। उन दोनों की भिड़न्त देखने के लिए, दोनों पक्ष के सैनिकों ने युद्ध बन्द सा कर दिया।

शुरू शुरू में, वीरसिंह का वज्रकाय से मुक़ाबला करना तो अलग, उसको देखकर

वह पीछे हटने लगा। वज्रकाय भी उसका पीछा करने लगा। बीरसिंह इस ख्याल से भाग रहा था कि वज्रकाय का, जो बहुत दिनों से लड़ा न था, इस तरह भागने से जल्दी साँस भर आयेगा, और उसको ऐसी हालत में आसानी से मारा जा सकता था।

पर बीरसिंह का ख्याल ग़लत निकला। वह ट्रोय नगर के क़िले के चारों ओर तीन बार भागा, पर वज्रकाय कतई न थका। आख़िर, बीरसिंह ने भागना बन्द किया। और वह जमकर मुक़ाबला करने लगा। ज्योंही उसने उस पर हमला किया, वज्रकाय ने उसकी छाती में छुरी भोंक दी। मरते मरते, बीरसिंह ने वज्रकाय से प्रार्थना की कि उसकी लाश उसके सम्बन्धियों को दे दी जाये।

परन्तु वज्रकाय ने बीरसिंह की अन्तिम प्रार्थना की कोई परवाह न की। उसने बीरसिंह का कवच उतारकर ले लिया और उसके पैरों को रस्सी से अपने रथ के पहियों से बाँधकर, वह रथ को बड़ी तेज़ी से अपने जहाज़ों की तरफ़ ले गया। बीरसिंह के शव को, वह मिट्टी में अन्धाधुन्ध घसीटता गया।

इस तरह बदला लेने के बाद, वज्रकाय ने पितृकीर्ति की अन्त्येष्टि-क्रिया की। उसकी समाधि पर घोड़ों और पितृकीर्ति के नौ शिकारी कुत्तों में से दो कुत्तों की, और बारह ट्रोजन क़ैदियों की बलि दी। इस तरह बलि दिये जानेवाले क़ैदियों में, वर्धन के लड़के भी थे। वज्रकाय ने पहिले बीरसिंह के शव को शिकारी कुत्तों को खाने के लिए देना चाहा, पर बाद में उसने वैसा न करने का ही निश्चय किया।

पितृकीर्ति के अन्त्येष्टि-क्रिया के सम्बन्ध में स्पर्धा-प्रतियोगिताएँ, आदि हुईं। रथों की प्रतियोगिता में देवमय जीता। मल्लयुद्ध में, रूपधर और मूधव बराबर समझे गये। किसी की हार-जीत नहीं हुई।

इतना होने पर भी, वज्रकाय का प्रतीकार अभी पूरा न हुआ था। वह रोज़ सवेरे उठकर, बीरसिंह का शव पितृकीर्ति की समाधि के चारों ओर तीन बार घसीटता और अपने क्रोध को शान्त कर लेता।

एक दिन रात को, ट्रॉय का राजा वर्धन ग्रीक छावनी में, अपने लड़के का शव खरीदने के लिए, वज्रकाय के तम्बु में घुसा। तब वज्रकाय गाढ़ी नींद में था।

अगर वह चाहता तो बदले में वर्धन को आसानी से मार सकता था। पर वर्धन ने ऐसा काम न किया। उसने बड़ी उदारता का व्यवहार किया।

वज्रकाय के उठने के बाद दोनों में सलाह-मशवरा हुआ। यह तय हुआ कि वर्धन वज्रकाय को, बीरसिंह के भार के बराबर सोना देगा। तब ग्रीक लोगों ने, ट्रोय के क़िले के बाहर एक बड़ा तौलने का यन्त्र लगाया। एक पलड़े पर बीरसिंह के शरीर को रखा और दूसरे पलड़े में सोना लाकर रखने को कहा।

ट्रोजन राजा वर्धन के ख़ज़ाने से जेवर जवाहरात सब लाकर, तराजू में रखने लगे। परन्तु बीरसिंह वाला पलड़ा ही थोड़ा भारी रहा। यह देख वर्धन की लड़की प्रमोदिनी ने अपने हाथ के कड़े निकालकर पलड़े में डाल दिये।

वज्रकाय पहिले ही प्रमोदिनी से बेहद प्रेम करने लगा था। अब उसको कड़े देते देख, उसने वर्धन की ओर मुड़कर कहा—"मुझे आपका सोना नहीं चाहिये। आप मेरा प्रमोदिनी के साथ विवाह कर दीजिये और भुवन सुन्दरी को प्रताप के पास पहुँचा दीजिये। हम युद्ध छोड़कर सन्धि कर लेंगे।"

"यदि चाहते हो तो तुम प्रमोदिनी से शादी कर लो। मुझे कोई एतराज़ नहीं है; पर मैं भुवन-सुन्दरी तुम्हें न सौंपूँगा। अगर मर्ज़ी हो तो इस शर्त पर सोच-विचार कर सन्धि कर लो।" वर्धन ने कहा।

"कोशिश करके देखूँगा।" वज्रकाय ने कहा।

वर्धन ने बीरसिंह की लाश ले जाकर, यथोचित रीति से उसका अन्त्येष्टि संस्कार कराया। तब ट्रोय वासियों के रोदन से आकाश गूँज उठा।

प्रमोदिनी से विवाह करने के लिए युद्ध के समाप्त करने की कोशिश कर, मानों वज्रकाय अपने आप अपने पैरों पर कुल्हाड़ा मार रहा था। युद्ध को बन्द करने के लिए ही प्रमोदिनी इस विवाह के लिए मान गई थी। पर उसने उसको क्षमा नहीं किया था। क्योंकि उसने उसके बड़े भाई इल्यि की हत्या की थी। वह उससे अब भी अन्दर ही अन्दर नाखुश थी।

प्रमोदिनी ने यह दिखाया, जैसे वह वज्रकाय से बहुत प्रेम करती हो। और आख़िर उसने उसकी जान का रहस्य भी जान लिया। वज्रकाय ने प्रेम वश बता दिया कि उसके दायें पैर के एड़ी में उसकी मृत्यु थी। ताकि उसका शरीर, वज्र के समान कठोर हो जाये, इसलिये उसकी माँ ने एड़ी पकड़कर ही उसे नदी में डुबाया था।

"तुम निश्शस्त्र होकर, नंगे पैर सूर्य के मन्दिर में चले आना। वहाँ सूर्य भगवान की बलि आदि देकर हम अपना विवाह निश्चित कर लेंगे।" प्रमोदिनी ने वज्रकाय से कहा।

वज्रकाय नंगे पैर, निहत्था, मन्दिर में गया। वहाँ प्रमोदिनी के निकट बन्धु-बान्धव भी थे। उसके बड़े भाई, अरिभयंकर ने, वज्रकाय का इस प्रकार आलिंगन किया, जैसे वह उसे बहुत चाहता हो। उसी समय मोहन ने मूर्ति के पीछे से, वज्रकाय के दाहिने पैर की एड़ी पर एक ज़हरीला बाण छोड़ा।

परन्तु वज्रकाय तुरत न मरा। उसने अग्निकुण्ड में से, दोनों हाथों में दो जल्ती लकड़ियाँ लीं और वहाँ खड़े कई ट्रोजनों को मारा। उसकी मार से कई ट्रोजन और मन्दिर के आदमी बलि हो गये। इस बीच, ग्रीक छावनी में, रूपधर और

भूधव को सन्देह हुआ कि वज्रकाय कोई षड्यन्त्र कर रहा था। वे नहीं जानते थे कि प्रमोदिनी से विवाह कर, उसने युद्ध रोक देने का वचन दे रखा था। उसको अकेला सूर्य मन्दिर में गया जान उन्होंने मालूम करना चाहा कि क्या षड्यन्त्र हो रहा था।

वे मन्दिर के अन्दर जा रहे थे कि उसी द्वार से, अरिभयंकर और मोहन बाहर आ रहे थे। रूपधर, भूधव, देवमय मन्दिर में जब घुसे, तो देखते क्या हैं कि वज्रकाय अन्तिम साँसें ले रहा है। "ट्रोय नगर को जीतने के बाद मेरी समाधि पर प्रमोदिनी की बलि चढ़ाना। यही मेरी अन्तिम इच्छा है।" कहते हुये, वज्रकाय ने अपने सैनिकों के हाथ में प्राण छोड़ दिये।

महाबलवान भूधव वज्रकाय की लाश को अपने कन्धे पर डालकर चला। तीनों योद्धा मन्दिर के बाहर आये। वज्रकाय की लाश को, ट्रोजनों ने जैसे तैसे पाने की कोशिश की, परन्तु ग्रीकों ने उनको पीछे हटा दिया और शव को अपने जहाज़ों के पास ले गये।

वज्रकाय की माँ, तटनी के दुख की सीमा न थी। उसके साथ, ग्रीक योद्धाओंने सत्रह दिन तक मातम मनाया।

अठारहवें दिन, वज्रकाय का अन्त्येष्टि संस्कार कर, उसकी अस्थियों, और पितृकीर्ति की अस्थियों को मिलाकर एक सोने के पात्र में डालकर, ट्रोय नगर और समुद्र के बीच के प्रान्त में उस पर एक समाधि बनाई। उस स्थान के पासवाले ग्राम का नाम उन्होंने वज्रकाय रखा। उस ग्राम में, उसके नाम पर एक मन्दिर बनवाया और उसमें उसकी मूर्ति रखी गई। यह मूर्ति अब भी वहाँ है। (अभी और है)

मौन-व्रत

किसी ज़माने में प्रताप नाम का एक नवयुवक जोधपुर में रहा करता था। वह मामूली घराने का था। फिर भी तलवार चलाने में वह बहुत माहिर था। अलावा इसके वह बहुत साहसी और बहादुर भी था। राजा की नौकरी में भरती होने के कुछ दिन बाद ही, वह अपनी बहादुरी दिखाकर, राजा का विश्वास-पात्र हो गया था। परन्तु क्योंकि वह बड़े घराने का न था और उसकी आयु भी अधिक न थी, इसलिये राजा ने उसकी तरफ़ कोई ध्यान न दिया और न उसको किसी बड़े पद पर ही नियुक्त किया।

उसी शहर में, हिरण्यगुप्त नाम का एक करोड़पति रहा करता था। उसके पार्वती नाम की एक लड़की थी। वह बहुत सुन्दर थी। प्रताप ने उसको एक बार देखा और उस पर दिवाना हो गया। उसके बाद उसने दो-तीन बार पार्वती से बातचीत करने की कोशिश की पर कर न सका। वह उस कार्य में असफल रहा।

राजा अपने विश्वास-पात्र प्रताप को दिन प्रति दिन काँटा होता देख घबराने लगा। उसने राज-वैद्य को बुलाकर कहा—"प्रताप को कोई बीमारी मालूम होती है। वह रोज़ रोज़ कमज़ोर होता जा रहा है। उसके प्राण अमूल्य हैं। जैसे भी हो, उसकी बीमारी ठीक करके, उसको स्वस्थ बनाओ।"

राजा की आज्ञा पर राज-वैद्य ने प्रताप की परीक्षा की, पर उसे रोग का पता न लगा। उसके बाद कुछ दिन कई औषधियाँ भी उसे दीं; फिर भी कोई असर न हुआ। वह सूखता ही जा रहा था।

श्री विनोद कुमार गौरहा

यह जानकर कि प्रताप बीमार है, उसका प्रिय मित्र सत्यवर्मा, उसे देखने आया। प्रताप ने उसको सच बात बता दी उसने कहा—"मनोव्याधि की कोई औषधि नहीं होती। जब तक मैं पार्वती से विवाह न कर लूँगा; तब तक यह बीमारी ठीक न होगी। और यह काम सम्भव नहीं मालूम होता, इसलिये मुझे घुट घुट कर मरना ही होगा; तुम मेरे लिए क्यों शोक करते हो?"

"पगले! इतनी-सी बात पर ही मन-मारे बैठे हो? तुम पार्वती से मिलकर कह देना कि तुम उससे प्रेम करते हो। वह तुमसे शादी करने के लिए शायद मान जाये। अगर न भी माने तो तुम्हें इतनी मनो-व्याधि तो नहीं होगी।" सत्यवर्मा ने कहा।

"असम्भव! पार्वती करोड़पति की लड़की है। और मैं एक मामूली सिपाही हूँ। मैं उससे कैसे मिल सकता हूँ? कैसे बात कर सकता हूँ? मुझे इसी तरह मरने दो।" प्रताप ने कहा।

"जो काम तुम नहीं कर सकते हो, वह मैं तुम्हारे लिये कर दूँगा। तुम हिम्मत न हारो!" उसके मित्र सत्यवर्मा ने उसको ढाढ़स बँधाया।

तब से प्रताप की बीमारी कम होने लगी। दो-तीन दिन में, वह स्वस्थ हो गया। पहले की कमज़ोरी भी जाती रही। राजा भी बड़ा खुश हुआ।

इस बीच सत्यवर्मा व्यापारी का वेश बनाकर एक गठरी में, स्त्रियों के उपयोग की चीज़ें रखकर सीधे हिरण्यगुप्त के घर गया। वहाँ उसने पार्वती को देखा। पार्वती उसकी लाई हुई चीज़ों को देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। वे चीज़ें आसानी से नहीं मिलती थीं। उनमें से कुछ चीज़ें चुनकर उसने पूछा—"इनके क्या दाम हैं?"

"इनमें से क्या आपको ये ही पसन्द आई हैं?" सत्यवर्मा ने पूछा।

"पसन्द आने को, जो कुछ तुम्हारे पास है, सब पसन्द आ रहा है। पर एक साथ कैसे खरीदूँ!" पार्वती ने कहा।

"मैंने कब आपसे पैसे माँगे हैं? ये चीज़ें जिसने आपके पास उपहार में भेजी हैं, वह व्यापारी नहीं है। पर आप पर जान देता है। उसने आपसे एक-दो बार बात करने की कोशिश की; पर उसमें वह सफल न हो सका। और निराश हो उसने चारपाई पकड़ ली। दिन प्रति दिन सूखता जा रहा है। अगर आप उसकी हाल्त देखें, तो आपका दिल भी पिघल उठेगा।" सत्यवर्मा ने पार्वती से कहा।

पार्वती ने सोचकर कहा—"कोई पागल-सा माल्रम होता है! अगर वह केवल बात ही करना चाहता है, तो कल दुपहर को यहाँ बुलाओ। बात करूँगी। सिर्फ़ इतनी-सी बात पर चारपाई पकड़ने की क्या ज़रूरत है!"

मित्र के यह बताने पर प्रताप बड़ा खुश हुआ। अगले दिन दुपहर को वह पार्वती के घर गया। पार्वती ने उसको अपने कमरे में बड़े आदर पूर्वक बुल्वाया। प्रताप ने उसको अपनी सारी कहानी सुनायी। प्रताप का हृदय यद्यपि अच्छा था, तो भी उसका प्रेम भ्रम है, इसलिये उसके भ्रम को हटाने के उद्देश्य से पार्वती ने उससे बिना संकोच के इस प्रकार कहा;

"तुम कह रहे हो कि तुम्हें मुझ पर बहुत प्रेम है। अगर यह सच है तो अब से, एक साल तक किसी से बात न करो। यदि तुमने यह कर दिखाया तो मैं समझूँगी कि तुम्हें सचमुच मुझ पर प्रेम है। तब मैं तुम से शादी करूँगी।"

पार्वती का यह ख्याल था कि प्रताप साल भर मौन रहने के लिये मानेगा नहीं, और इसलिये उसको उससे शादी करने की नौबत भी न आयेगी।

प्रताप जान गया कि पार्वती कड़े दिल की है और उसको उस पर कोई प्रेम नहीं है। उसको उस पर बहुत गुस्सा आया। इसलिये उसने एक साल तक मौन रहकर, उसको द्विविधा में डालना चाहा। संकेत से उसने पार्वती को सूचित कर दिया कि वह मौन रहेगा। वह यह कह करके चला गया।

उसके बाद, उसने किसी से बातचीत न की। यह बात सब जगह फैल गई कि वह बात न कर सकता था। उसको कोई बीमारी हो गई थी। यह सुन राजा को बड़ा दुख हुआ। राजा थोड़े दिन पहिले ही उसे स्वस्थ जान सन्तुष्ट हुआ था कि उसको यह बीमारी हो गई। उसने देश के वैद्यों को बुलाकर आज्ञा दी कि उसकी उचित चिकित्सा करें।

कई वैद्यों ने आकर प्रयत्न किया। पर कोई भी प्रताप से न बुलवा सका। राजा की चिन्ता, दिन प्रति दिन बढ़ती गई।

"प्रताप नौजवान है। अच्छा योद्धा है। किसी भी दिन सेनापति होकर, देश के लिए कीर्ति कमा सकता है। उसकी ज़बान क्यों गिर गई? वैद्य उसकी चिकित्सा क्यों नहीं कर पाते हैं? घोषणा कर दो कि जो कोई उसकी बीमारी ठीक कर सकेगा, उसको एक लाख रुपया इनाम में दिया जायेगा।" राजा ने मन्त्रियों से कहा।

आज्ञानुसार सर्वत्र यह घोषणा की गई। जाने कहाँ कहाँ से वैद्य आये, पर उसकी "मूकता" का इलाज न कर सके। लाख रुपये के लालच में, कई ऐसे भी आये, जो वैद्य न थे और प्रताप को सताने लगे। यह जानकर राजा ने घोषणा की कि जो कोई चिकित्सा प्रारम्भ कर, प्रताप को ठीक न कर पायेगा, उस पर जुरमाना लगाया जायेगा, और जुरमाना न देने पर जेल भेजा जायेगा।

छः महीने बीत गये। कई वैद्य, उसका इलाज न कर सके, जुरमाना भी न दे सके; इसलिये जेल में डाल दिये गये थे। ये ख़बरें यथा समय पार्वती के पास भी पहुँच रही थीं। पहिले तो उसे आश्चर्य हुआ।
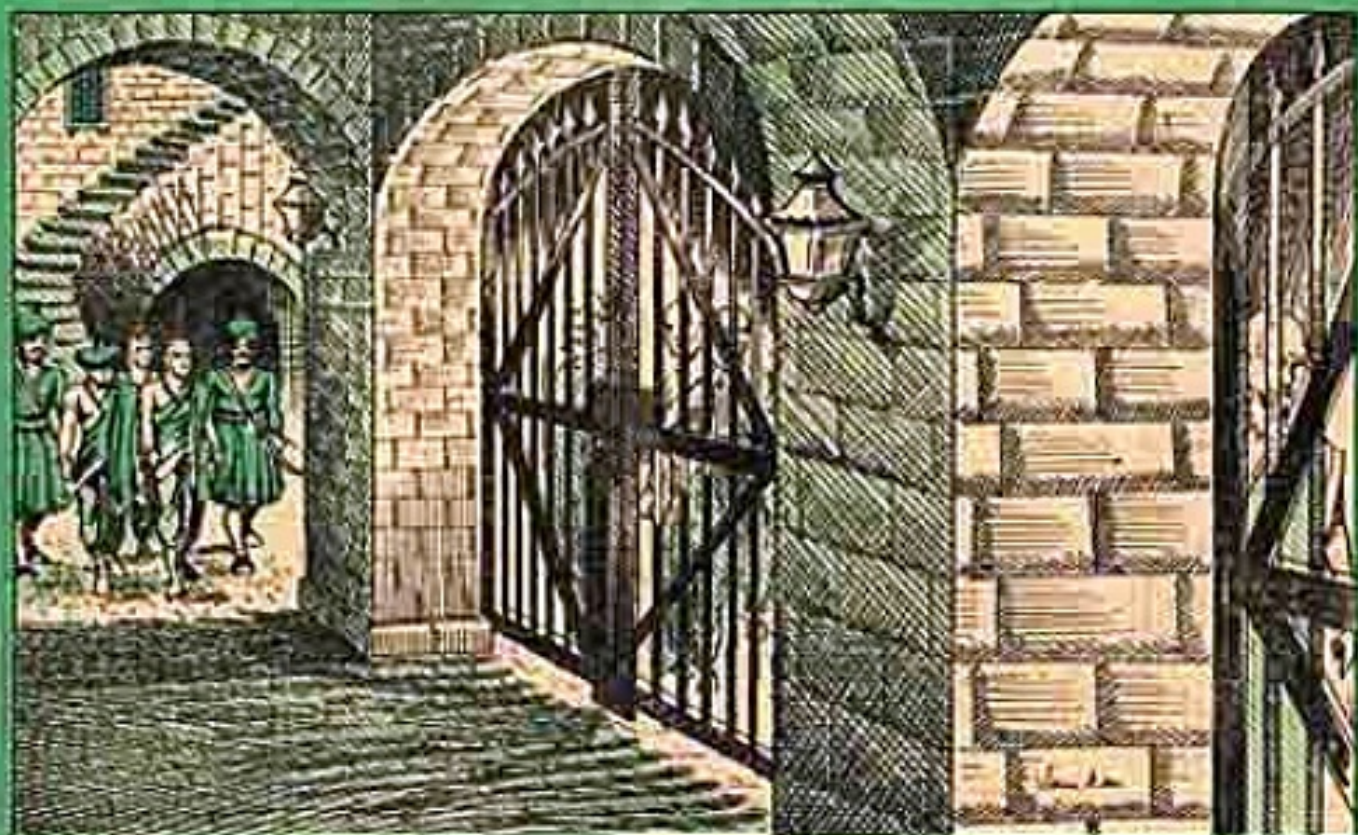
इतना प्रेम-पात्र था। क्योंकि उसके कारण, ही यह सब गड़बड़ी हुई थी, इसलिये उसने सोचा कि अच्छा होगा, यदि उसके द्वारा ही वह मौन-व्रत समाप्त हो।

इसलिये पार्वती ने राजा से मिलकर कहा—"महाराज! मुझे अनुमति दीजिये। प्रताप की चिकित्सा करने का मैं वचन देती हूँ।"

राजा ने आश्चर्य से पूछा—"जो बड़े बड़े वैद्य नहीं कर पाये, वह तुम कैसे कर सकोगी? तुम क्या वैद्यक जानती हो?"

"मैं वैद्यक तो नहीं जानती, पर यह जानती हूँ कि वह क्यों नहीं बोल पा रहा है। इसलिये मैं उससे बुला सकती हूँ। चिकित्सा करने के लिए मुझे अनुमति दीजिये।" पार्वती ने कहा। "मगर चिकित्सा न कर पाओगी, तो जुरमाना देना होगा। क्या यह जानती हो?" राजा ने पूछा।

"जी! मैं इसी शर्त पर चिकित्सा करूँगी।" पार्वती ने कहा।

राजा की अनुमति लेकर वह प्रताप के पास गई।

क्योंकि उसने कभी कल्पना भी न की थी कि प्रताप यह मौन-व्रत अन्त तक निभा सकेगा। फिर प्रताप पर दया आई। वह क्यों नहीं बोल रहा है, सिवाय उसके और कोई न जानता था। वैद्य आकर उसको बुरी तरह सता रहे थे। राजा के नियम के कारण, अच्छे वैद्य भी जेल में डाल दिये गये थे। कुछ का कुछ हो गया था।

प्रताप के बारे में राजा की दिलचस्पी देखकर पार्वती को अचरज हुआ। पार्वती ने सोचा था कि वह कोई मामूली सिपाही था। वह न जानती थी कि वह राजा का

"मैने तुम्हारा बड़ा अपकार किया है। छः महीने से गूँगे हो। यह काफ़ी है। अब बातें करना शुरू कर दो। मैं तुम से विवाह करूँगी।" उसने प्रताप से कहा।

प्रताप का उस पर गुस्सा तब भी ठंडा न हुआ। "यह दुष्टा एक वर्ष के ख़तम होने से पहिले ही मुझसे बुल्वाकर, राजा द्वारा घोषित लाख रुपये का ईनाम लेने की सोच रही है क्या! इसको पाठ सिखाना होगा।" यह सोचकर उसने कोई जवाब न दिया। जो कुछ भी वह कहती वह इशारा करता—"बात नहीं कर सकता।"

पार्वती ने उसको मनाया। मनाते मनाते उसकी आँखों में तरी भी आगई। परन्तु प्रताप ने बात करने से इनकार कर दिया। पार्वती, हताश हो गई। उसने राजा के पास जाकर कहा—"महाराज! मेरी चिकित्सा व्यर्थ गयी। मुझे दण्ड दीजिये।"

पार्वती को जेल में रखकर उसके पिता के पास ख़बर भेजी गई। उसके पिता ने आकर जुरमाना दिया और उसको वापिस घर ले गया।

यह सुनकर प्रताप का गुस्सा ठँडा हुआ। उसने सोचा कि पार्वती को काफ़ी

सज़ा मिल गई है। इसलिये उसने सोचा कि अब मौन-व्रत ख़तम किया जा सकता है। क्योंकि प्रताप किसी ऐसी लड़की से विवाह न करना चाहता था, जो उसे न चाहती हो।

प्रताप सीधे राजा के पास गया। उसने साफ़ साफ़ कह दिया कि उसे मौन-व्रत क्यों करना पड़ गया था। उसने राजा से क्षमा माँगी। राजा ने सारी कहानी सुनकर पार्वती को बुल्वा भेजा।

उससे राजा ने कहा—"एक छोटी-सी ग़ल्ती हो गई है। यह सोचकर कि तुम्हारी

की हुई प्रताप की चिकित्सा व्यर्थ गई हमने तुम पर जुरमाना लगाया। परन्तु बाद में ख्याल आया कि अगर प्रताप बोल सका है, तो तुम्हारी चिकित्सा के ही कारण। इसलिये तुम्हारा जुरमाना तुम्हें वापिस देंगे ही, और साथ एक लाख रुपये ईनाम भी देंगे। ले जाओ।"

पार्वती यह सुनकर सन्तुष्ट नहीं मालूम हुई।

"महाराज! मैंने ईनाम के लालच में आकर उसकी चिकित्सा न की थी। मैंने उसका बड़ा अपकार किया था। उसका प्रायश्चित्त करने की इच्छा से ही मैंने यह किया था। एक समय मैंने उसको बहुत प्रेम किया था। अब मैं वह प्रेम खो बैठी हूँ। यह दण्ड मेरे लिये काफ़ी है। अगर उसे मुझ पर प्रेम होता तो तभी बोल्ता जब मैंने उससे बोलने के लिए प्रार्थना की थी। मेरी चिकित्सा व्यर्थ रही, यह सच है। आपको, मुझे कोई ईनाम देने की ज़रूरत नहीं है।" पार्वती ने कहा।

राजा जान गया कि पार्वती अब प्रताप से प्रेम कर रही थी। उसने प्रताप को बुल्वाकर कहा—"तुम दोनों का मूक हो एक दूसरे के लिए तड़पना मुझे अच्छा नहीं लगता। तुम अपना मौन-व्रत समाप्त करके तुरत विवाह कर लो।"

केवल एक बात से ही, पार्वती और प्रताप के कष्ट काफ़ूर हो गये। उनका जल्दी ही विवाह हो गया। राजा ने उनको कई चीज़ें उपहार में दीं और उनको लाख रुपये भी दहेज के रूप में दिये।

राजा ने प्रताप को बड़े पद पर नियुक्त किया और काल-क्रम से प्रताप देश का सेनापति भी हुआ।

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

जून १९५७ :: पारितोषिक १०)

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें ।

ऊपर के फ़ोटो के लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर संबन्धित हों। परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिख कर निम्नलिखित पते पर ता. ५, अप्रैल '५७ के अन्दर भेजनी चाहिये।

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता
चन्दामामा प्रकाशन
वडपलनी :: मद्रास - २६

अप्रैल – प्रतियोगिता – फल

अप्रैल के फ़ोटो के लिये निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं।
इनकी प्रेषिका को १० रु. का पुरस्कार मिलेगा ।

पहिला फ़ोटो:
'तू क्यों उड़ता आज अकेला !'

दूसरा फ़ोटो:
'हम तो मना रहे हैं मेला !'

प्रेषिका: कुमारी इन्दिरा भटनागर C/o. श्री एस. एन. भटनागर, न्यू पवर हाउस, चंडीगढ़ ।

खरगोश की चालाकी

(गतांक से आगे)

थोड़ी देर बाद उस तरफ़ गिद्ध आया। भूमि पर लोमड़ी को बेहोश पड़ा देखकर उसने कहा—"अरे....अरे....! लगता है, लोमड़ी मामी के दिन पास आ गये हैं।"

लोमड़ी ने उठकर कहा—"बिना इस खरगोश को मारे क्यों मैं मरूँगी!"

"खरगोश!" गिद्ध ने पूछा।

"इस पेड़ की खोल में घुस गया है। क्यों भाई गिद्ध! थोड़ी देर तुम पहरा दो। मैं घर जाकर एक कुल्हाड़ी ले आती हूँ।" लोमड़ी ने कहा।

लोमड़ी के चले जाने के बाद खोल में छुपे खरगोश ने पुकारा—"लोमड़ी जीजी! ओ लोमड़ी जीजी।"

गिद्ध ने थोड़ी देर ठहरकर लोमड़ी की आवाज़ में पूछा—"क्या!"

"इस खोल में, एक बड़ा चूहा है। अगर एक गिद्ध हो तो क्या अच्छा हो।"

"मैं गिद्ध ही हूँ चूहे को बाहर। हाँक।" गिद्ध ने कहा।

इस तरफ़ का रास्ता मैंने रोक रखा है, उस तरफ़ तू आ। मैं इसे चूहे को बाहर भगाता हूँ।" खरगोश ने कहा। गिद्ध वृक्ष के परली तरफ़ गया।

"होय....थी....री...." खरगोश ने शब्द किया और बाहर झाँककर देखा। गिद्ध के पीछे जाते ही वह बाण की तरह सरपट भाग कर, घर पहुँच गया।

गिद्ध जान गया कि खरगोश हाथ से निकल गया था।

"मैं ही क्यों अकेला धोखा खाऊँ? मैं लोमड़ी को भी तंग करके जाऊँगा।" यह सोच गिद्ध वहीं बैठ गया।

श्री सुमन कुमार जोशी

लोमड़ी कन्धे पर कुल्हाड़ा रख आ पहुँची। "खरगोश क्या कर रहा है?"

"कुछ पता नहीं! शायद पड़ा पड़ा सो रहा होगा।" गिद्ध ने कहा।

"चलो उसे उठायें।" कहते हुए लोमड़ी ने कुल्हाड़ी से पेड़ काटना शुरू किया।

दस बार चोटकर वह थक गयी। कुल्हाड़ी रखकर, जब वह हाँफने लगी तो गिद्ध उसकी हालत देखकर हँसने लगा। तब लोमड़ी को पता लग गया कि उसे धोखा दिया गया था। उसने गुस्से में पूछा—"क्या खरगोश खोल में है?"

"हाँ, तुम्हारी क़सम, लोमड़ी मामी।" गिद्ध ने कहा।

लोमड़ी ने खोल के अन्दर झाँक कर देखा। "वह जो दीख पड़ रहा है, क्या वह उसका पैर ही है?"

गिद्ध ने खोल में अपना सिर रखा। उसका सिर पकड़कर लोमड़ी ने कहा—"देख दुष्ट कहीं का, तू भी मुझे धोखा देता है? देख, मैं तेरी क्या हालत करती हूँ।"

"छोड़ो, लोमड़ी मामी। मुझे क्यों पकड़ती हो?"....गिद्ध ने कहा।

"क्यों? तुझे खोल का पहरा देने के लिये कह गया था। खरगोश धोखा देकर भाग गया है। अगर इस जंगल में सब कोई धोखा दे, तो मेरी कौन सुनेगा मर।" कहते हुए लोमड़ी ने गिद्ध की पूँछ पकड़कर उसे मारना चाहा। गिद्ध के दो-चार पंख निकलकर उसके हाथ में आ गये। गिद्ध ने उड़कर जाते हुए कहा—"और तेरी अक्ल भी मारी गई है। क्या खूब" उसने उसका मज़ाक किया।

(अभी और है)

प्रो. पी. सी. सरकार

यह एक नया महत्वपूर्ण जादू है। जादूगर की आँखों पर इस तरह पट्टी बाँध दी जाती है कि वह कुछ न देख सके। फिर दो दर्जन से अधिक रंग-बिरंगी पेन्सिलें लाई जाती हैं। वे सब की सब अलग अलग हैं, उनकी मोटाई, लम्बाई अलग अलग है; यानि सब प्रकार से वे भिन्न हैं। तब वे मिला दी जाती हैं। कोई भी बिना गौर से देखे यह न जान सकेगा कि वे जापान में बनी हैं, या बवेरिया या अमेरिका या मद्रास या बम्बई या दिल्ली में। तब ये पेन्सिलें एक बड़े टोप में डाल दी जाती हैं। फिर टोप में से, एक दर्शक एक पेन्सिल चुनकर उठा लेता है और दूसरों को देखने के लिए दे देता है। जब यह मालूम कर लिया जाता है कि वह कहाँ बनी है या वह किस रंग की है, कितनी मोटी है, कितनी लम्बी है तब उन्हें फिर टोप में डाल दिया जाता है। टोप जादूगर को दे दिया जाता है। जादूगर अपना हाथ टोप में रखता है और चुनी हुई पेन्सिल को उठा लेता है। और अगर कोई और पेन्सिल उसके हाथ में आती है, तो वह कह देता है, "यह नहीं, यह नहीं।"

जादू बड़ा आसान है। दर्शकों में, जादूगर का एक सहायक होता है। पारिभाषिक भाषा में, इस सहायक को "ह्रांट" कहा जाता है। कई बड़े जादूगर "ह्रांट" का उपयोग करते हैं। जब दर्शक पेन्सिल चुन रहे होते हैं, तब यह "ह्रांट" भी उनमें मिल

जाता है और टोप में पेन्सिल के डालने से पहिले, वह जैसे तैसे स्वयं पेन्सिल देखता है। वह उस पेन्सिल की नोक पर थोड़ी बहुत कोल्ड क्रीम लगा देता है, और फिर टोप में डाल देता है। जादूगर यह देखता है कि किस पेन्सिल की नोक पर कोल्ड क्रीम है और आसानी से चुनी हुई पेन्सिल ढूँढ निकालता है।

मैंने यह जादू खानेवाली गोंद लगाकर किया था। और भी कोई गोंद उपयोग की जा सकती है। और अगर सहायक के रूमाल में थोड़ी बर्फ़ हो तो वह भी लगाई जा सकती है, ताकि पेन्सिल थोड़ी ठंडी हो जाये और आसानी से जानी जा सके।

पाठक यदि इस सम्बन्ध में और जानकारी चाहें तो प्रोफ़ेसर साहब से 'चन्दामामा' का उल्लेख करते हुए, अंग्रेज़ी में पत्र-व्यवहार कर सकते हैं। उनका पता यों है :

प्रो. पी. सी. सरकार,
मेजीशियन,
पोस्ट बालीगंज, कलकत्ता - १९.

हीराकुड बांध संसार के सबसे लम्बी तथा विशाल बांधों में से एक है। इस बांध का जलाशय २८८ वर्ग मील में फैला हुआ है और इसमें ४२ लाख ७० हज़ार एकड़ फुट पानी जमा हो सकता है।

महानदी, जिस पर ३ मील लम्बा मिट्टी-ईंट तथा कांकरीट से बना यह बाँध है, भारत और संसार की बड़ी नदियों में गिनी जाती है। इसकी लम्बाई ५३३ मील है और इसमें ५१,००० वर्ग मील क्षेत्र का पानी बहकर आता है।

अभी हाल ही में तरुण भारतीय तैल इंजीनियरों का एक दल सोवियत संघ पहुँचा है। वे सोवियत संघ के तैल क्षेत्रों में प्रायोगिक प्रशिक्षा प्राप्त करेंगे। वे सभी भारतीय सरकार द्वारा हाल में संगठित तैल और गैस आयोग के कर्मचारी हैं। ये भारतीय विशेषज्ञ ६ महीनों के दौरान सागर तल के सोतों की ड्रिलिंग, टर्बाइन ड्रिलिंग, साज सामानों का संरक्षण आदि की सोवियत प्रणालियों का परिचय प्राप्त करेंगे। वे भारत लौटकर ड्रिलिंग इंजीनियर का काम करेंगे।

इस समय भारत में साइकिल बनाने के कुल ६३ कारख़ाने हैं। इनमें से १६ पंजाब में, १३ दिल्ली में, ९ बम्बई में, ७ उत्तर प्रदेश में, ६ पश्चिम बंगाल में, ५ मध्य प्रदेश में, ४ राजस्थान में, २ मद्रास में और १ बिहार में है। सन् १९५६ में ६ लाख १५ हज़ार से अधिक साइकिलें बनीं, जबकि १९५५ में केवल ४ लाख ९१ हज़ार और १९५४ में ३ लाख ७२ हज़ार साइकिलें बनी थीं।

* * *

इधर बाराबंकी में एक ऐसी महिला की मृत्यु हुई जिन्होंने अपनी सातों पीढ़ियाँ (पति के पितामह से लेकर पौत्र के पौत्र तक) देखीं। ये थीं इस नगरी की मातामही श्रीमती मुन्नी देवी। इनकी मृत्यु ठीक उस दिन हुई, जिस दिन उनका १२५ वाँ जन्म दिवस था। अन्त काल तक वे पूर्ण स्वस्थ रहीं और अपने बल पर चलती फिरती और सीती-पिरोती थीं।

* * *

पिछले मकर संक्रान्ति के पर्व के अवसर पर राजस्थान राज्य के सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय ने पंचवर्षीय योजना के प्रचार के लिए पतंगों से काम लिया। योजना के विभिन्न पहलुओं के रेखा-चित्रों से सुसज्जित बहुरंगी पतंग सवेरे से संध्या तक आसमान में उड़ते रहे और प्रत्येक पतंग के कटने पर पंचवर्षीय योजना का संदेश नगर के एक छोर से दूसरे छोर तक व्याप्त हो गया।

चित्र - कथा

एक दिन शाम को दास और वास 'टाइगर' को साथ लेकर घूमने के लिए खेत की तरफ़ चले! वहाँ भी उन्हें एक और लड़का दिखाई दिया। उसके साथ एक कुत्ता था, जो देखने में 'टाइगर' से बड़ा था। उसने अपने कुत्ते के साथ 'टाइगर' को भगाने को कहा। दास और वास मान गये। दोनों दौड़े। 'टाइगर' ने उस बड़े कुत्ते की पूंछ पकड़ ली। जब दोनों गम्य स्थान के पास पहुँचे तो 'टाइगर' ने उसकी पूँछ छोड़ी और एक छलाँग में उसके आगे कूद पड़ा। आखिर टाइगर ही जीत गया।

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press (Private) Ltd., and Published by him for Chandamama Publications, from Madras 26—Controlling Editor: SRI 'CHAKRAPANI'

Photo by Anant Desai
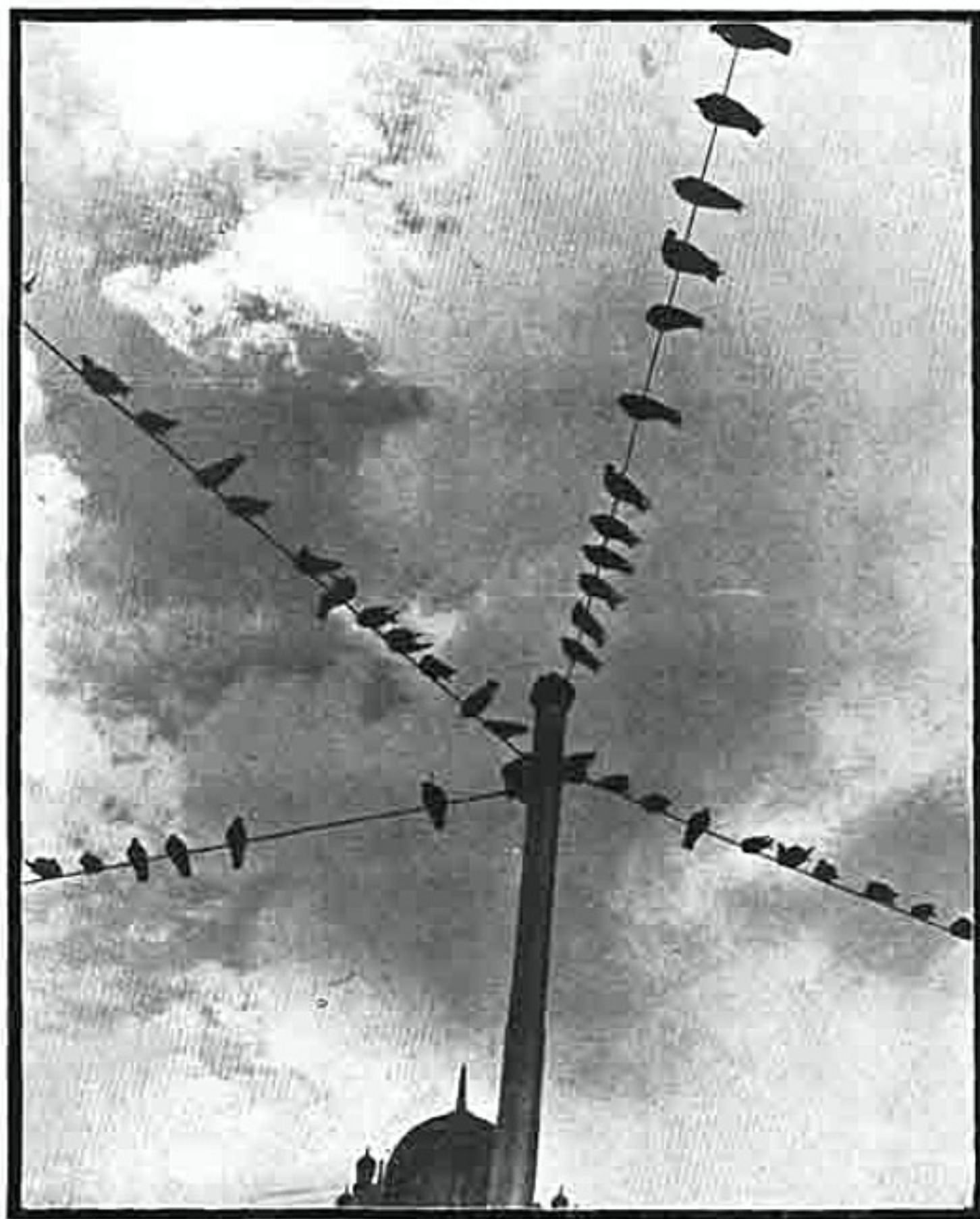
पुरस्कृत परिचयोक्ति

'हम तो मना रहे हैं मेला!'

प्रेषिका : कुमारी इन्दिरा, चंडीगढ़

CHANDAMAMA (Hindi) APRIL 1957 Regd. No. M. 5452

भुवन - सुन्दरी